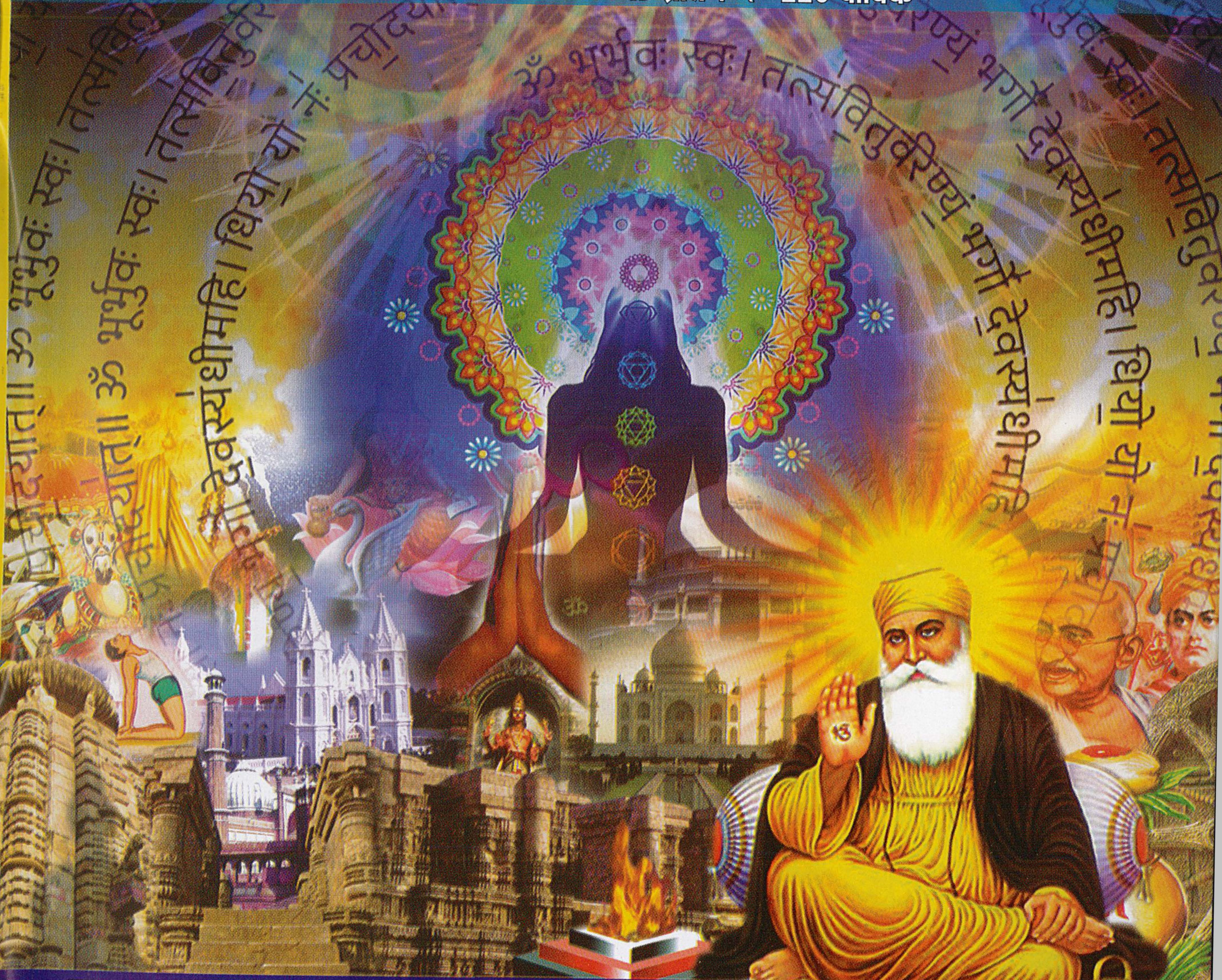
अप्रैल –2022

अखण्ड ज्योति

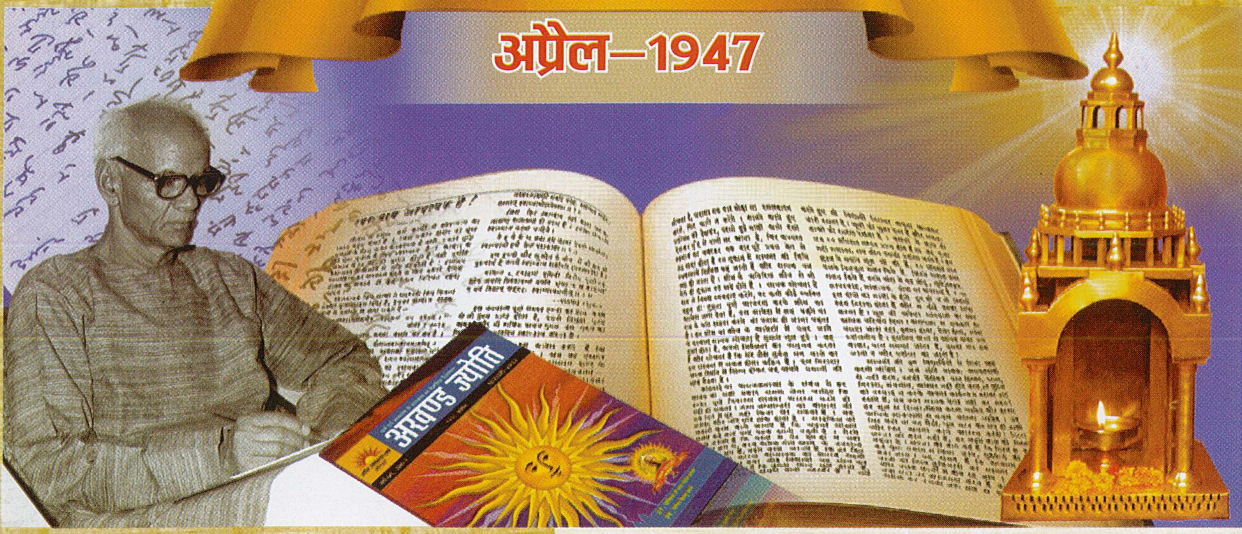
धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

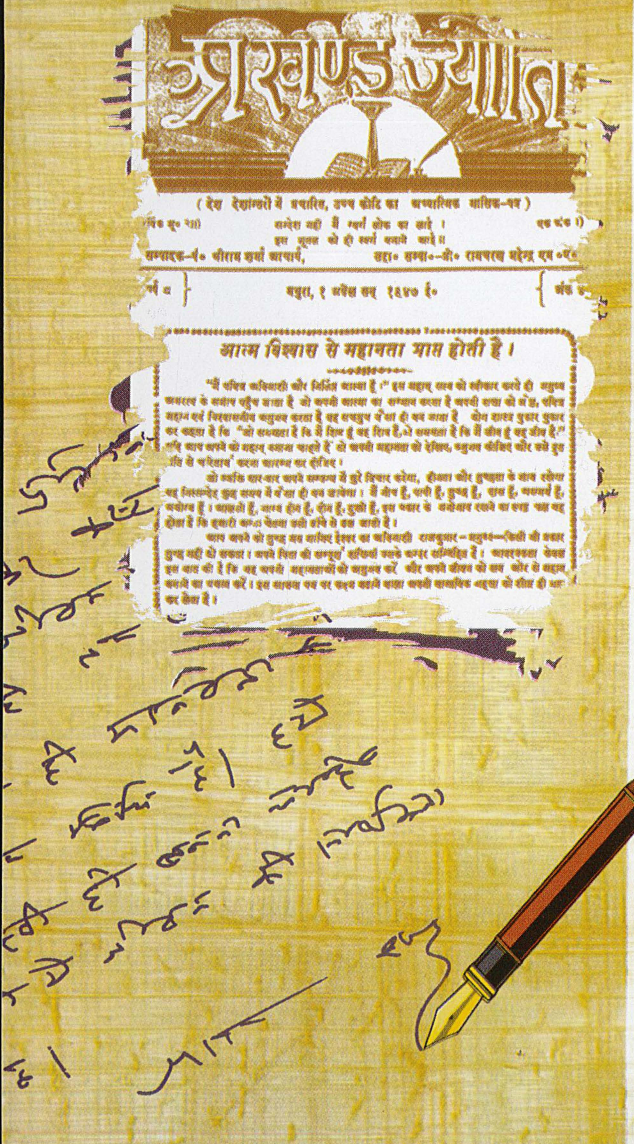
वर्ष–86 । अंक–4 । ₹–19 प्रति । ₹–220 वार्षिक



अखण्ड ज्योति 75 वर्ष पूर्व

अप्रैल–1947





अखण्ड ज्योति

(देश देशान्तरों में प्रचारित, उच्च कोटि का आध्यात्मिक मासिक-पत्र)

मथुरा, १ अप्रैल सन् १९४७ ई०

आत्म विश्वास से महानता प्राप्त होती है।

आत्मविश्वास से महानता प्राप्त होती है

'मैं पवित्र अविनाशी और निर्लिप्त आत्मा हूँ।' इस महान सत्य को स्वीकार करते ही मनुष्य अमरत्व के समीप पहुँच जाता है,जो अपनी आत्मा का सम्मान करता है, अपनी सत्ता को श्रेष्ठ, पवित्र, महान एवं विश्वसनीय अनुभव करता है; वह सचमुच वैसा ही बन जाता है। योग शास्त्र पुकार–पुकारकर कहता है कि 'जो समझता है कि मैं शिव हूँ वह शिव है, जो समझता है कि मैं जीव हूँ वह जीव है' यदि आप अपने को महान बनाना चाहते हैं तो अपनी महानता को देखिए, अनुभव कीजिए और उसे द्रुत गति से चरितार्थ करना आरंभ कर दीजिए।

जो व्यक्ति बार–बार अपने संबंध में बुरे विचार करेगा, हीनता और तुच्छता के भाव रखेगा, वह निस्संदेह कुछ समय में वैसा ही बन जाएगा। मैं नीच हूँ ,पापी हूँ, तुच्छ हूँ, दास हूँ, असमर्थ हूँ, अयोग्य हूँ, आलसी हूँ, भाग्यहीन हूँ, दीन हूँ, दुःखी हूँ; इस प्रकार के मनोभाव रखने का स्पष्ट फल यह होता है कि हमारी अंतश्चेतना उसी ढाँचे में ढल जाती है।

आप अपने को तुच्छ मत मानिए; ईश्वर का अविनाशी राजकुमार–मनुष्य किसी भी प्रकार तुच्छ नहीं हो सकता। अपने पिता की संपूर्ण शक्तियाँ उसके अंदर सन्निहित हैं। आवश्यकता केवल इस बात की है कि वह अपनी महानताओं को अनुभव करे और अपने जीवन को सब ओर से महान बनाने का प्रयत्न करे। इस साधना–पथ पर कदम बढ़ाने वाला अपनी वास्तविक–महत्ता को शीघ्र ही प्राप्त कर लेता है।

—पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य



संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं0 श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ0 प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
अखण्ड ज्योति संस्थान
घीयामंडी, मथुरा (281003)
दूरभाष नं0 (0565) 2403940, 2402574
2412272, 2412273
मोबाइल नं0 9927086291
7534812036
7534812037
7534812038
7534812039
कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस. एम. एस. न करें।
नया ईमेल-
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org
प्रातः 10 से सायं 6 तक

वर्ष	: 86
अंक	: 04
अप्रैल	: 2022
चैत्र-वैशाख	: 2078-2079
प्रकाशन तिथि	: 01.03.2022

वार्षिक चंदा

भारत में	: 220/-
विदेश में	: 1600/-

आजीवन (बीसवर्षीय)

भारत में	: 5000/-

ज्ञान व कर्म

हमारे जीवन में ज्ञान के महत्त्व से भला कौन परिचित नहीं है, पर सत्य यह है कि हमारे जीवन में ज्ञान का मूल्य तब ही है, जब उसके साथ तदनुरूप कर्म भी जुड़ा हुआ हो। अज्ञानी तो अपना जीवन क्षुद्र उद्देश्यों की पूर्ति में लगाकर ही स्वयं को संतुष्ट अनुभव करते हैं, परंतु ज्ञानवानों का अंत:करण जाग्रत होने पर उसी के अनुरूप कर्म की अभीप्सा करता है और वैसा न कर पाने पर ऐसे व्यक्ति असंतोष व आत्मप्रताड़ना को भी अनुभव करते हैं। ज्ञान-संपदा पर यह तथ्य अक्षरशः सत्य सिद्ध होता है। यदि ज्ञान को कर्म रूप में परिणत होने का अवसर न दिया जाए तो वह संग्रहकर्त्ता के लिए परेशानियों का ही कारण बनता है।

ज्ञान का मात्र संचय करना बुद्धि-विलास कहलाता है। ऐसा नहीं है कि वह कोई बुरी बात है, परंतु उस संचित ज्ञान की सार्थकता तो तभी है, जब उसे अभीष्ट कर्म में परिणत किया जा सके। यदि वैसा न बन सके तो फिर व्यक्तित्व में अनर्गल द्वंद्व पनपते देखे जा सकते हैं। इसीलिए नीतिकार ने कहा है—

यस्तु मूढ़तमं लोके यस्तु बुद्धि परंगता।
उभौ तौ सुरन मश्नुते मान्यैवमितरोजनाः॥

अर्थात इस संसार में दो ही लोग सुखी देखे जाते हैं—एक तो वो, जो मूढ़तम हैं और दूसरे वो, जो पारंगत बुद्धिवाले। कहने का अर्थ स्पष्ट है कि बुद्धि की पारंगतता तभी है, जब उसे यथोचित कर्म में संलग्न किया जा सके। यही करने के लिए हम सभी को तत्पर रहना चाहिए। ❑

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

विषय सूची

आवरण पृष्ठ परिचय

सद्‌गुरुओं की गैलरी में गुरु नानक जी

अप्रैल-मई, 2022 के पर्व-त्योहार

शनिवार	02 अप्रैल	चैत्र नवरात्रारंभ/ नवसंवत्सरारंभ	सोमवार	02 मई	शिवाजी जयंती
सोमवार	04 अप्रैल	गणगौर	मंगलवार	03 मई	अक्षय तृतीया/ परशुराम जयंती
गुरुवार	07 अप्रैल	सूर्य षष्ठी	शनिवार	07 मई	सूर्य षष्ठी/टैगोर जयंती
रविवार	10 अप्रैल	श्रीराम नवमी/संत रामदास जयंती	रविवार	08 मई	गंगोत्पत्ति
मंगलवार	12 अप्रैल	कामदा एकादशी 'स्मा.'	गुरुवार	12 मई	मोहिनी एकादशी
गुरुवार	14 अप्रैल	महावीर जयंती/आंबेडकर जयंती	शनिवार	14 मई	नृसिंह जयंती
शनिवार	16 अप्रैल	हनुमज्जयंती/चैत्र पूर्णिमा	सोमवार	16 मई	बुद्ध पूर्णिमा
मंगलवार	26 अप्रैल	वरूथिनी एकादशी	गुरुवार	26 मई	अपरा एकादशी
शनिवार	30 अप्रैल	शनि अमावस्या	सोमवार	30 मई	वट सावित्री व्रत/ सोमवती अमावस्या

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे।** —*संपादक*

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

विशिष्ट सामयिक चिंतन

उत्कृष्टता की सोच देती भारतीय संस्कृति



स्वामी विवेकानंद के जीवन का एक महत्त्वपूर्ण घटनाक्रम आज के परिप्रेक्ष्य में अत्यंत प्रासंगिक एवं सामयिक हो जाता है। जब वे अपनी पाश्चात्य देशों की यात्रा के उपरांत 15 जनवरी, 1897 को कोलंबो पहुँचे तो वहाँ के निवासियों ने उनका भव्य स्वागत किया और करने के उपरांत उनसे एक प्रश्न पूछा। उन्होंने स्वामी जी से पूछा—''आप इतने वर्षों तक पाश्चात्य देशों के भ्रमण पर रहे और उनको भारतीय दर्शन का, अध्यात्म का ज्ञान भी दिया, पर क्या आपने इतने दिनों तक रहकर स्वयं कुछ लाभ प्राप्त किया?'' इसके उत्तर में स्वामी विवेकानंद बोले—''विदेश जाने का जो सबसे बड़ा लाभ मुझे हुआ वो यह हुआ कि पहले जिन बातों को मैं भावना के आवेश में आकर सत्य मान लिया करता था, अब उनको प्रमाणपूर्वक सत्य मानता हूँ।''

स्वामी विवेकानंद अपने कहे का अर्थ समझाते हुए बोले—''जब मैं छोटा था तो सभी कहते थे कि भारत पवित्र भूमि है तो मैं भी सबके कहे को दोहराया करता था, पर अब मैं इतने वर्षों तक अपनी मातृभूमि से दूर रहा हूँ तो इस बात को पूरे विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि यह बात पूरी तरह से सत्य है। यदि पूरी पृथ्वी पर कोई एक ऐसा देश है, जहाँ धरती के प्रत्येक जीव को अपना कर्मफल भोगने के लिए एक-न-एक दिन आना ही पड़ता है; कोई एक ऐसा देश है, जहाँ भगवान को पाने का प्रयत्न कर रही प्रत्येक आत्मा को एक-न-एक दिन आना ही पड़ेगा; कोई एक ऐसा देश है, जहाँ दया, त्याग, करुणा, मानवता आदि सत्प्रवृत्तियों से लेकर आध्यात्मिक अनुसंधान का सर्वाधिक विकास हुआ है—तो वो देश भारत है और आज नहीं तो कल इसी देश से ज्ञान की वो धारा फिर से बहेगी, जो संपूर्ण विश्व को अपनी आध्यात्मिक ऊर्जा से परिपूर्ण करेगी और संपूर्ण विश्व को उसके लिए भारत का ऋणी होने की आवश्यकता है।''

उनके द्वारा वर्षों पहले कही गई वो बातें आज भी अक्षरशः सत्य कही जा सकती हैं। यदि इस भारत की धरती से तप, योग, ज्ञान, ध्यान की धाराएँ प्रवाहित न हुई होतीं तो मानव जाति को मानवता का सौभाग्य ही प्राप्त न हो पाया होता। इस संपूर्ण विश्व को यदि संस्कृति व सभ्यता का उपहार किसी एक देश से मिला तो वह भारत देश से मिला। भारत सच पूछा जाए तो मात्र एक देश का नहीं, बल्कि एक संस्कृति का नाम है और इसीलिए वेदों के ऋषि, गर्व के साथ इस सत्य को कह सके कि '**सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा**'—यही विश्व की प्रथम एवं एकमात्र संस्कृति है।

भारतीय संस्कृति उस संस्कृति का नाम है, जहाँ से मानवीय उत्कृष्टता का उदय हुआ, चिंतन का उदय हुआ कि एक अच्छा इनसान बनने के लिए हमें किन गुणों की आवश्यकता होती है। भारतीय संस्कृति ने विश्व को यह चिंतन प्रदान किया कि इनसान की सच्ची कीमत बाहरी सफलता के आधार पर नहीं, बल्कि आंतरिक उत्कृष्टता व पात्रता के आधार पर आँके जाने की आवश्यकता है। भौतिक सफलता के लिए भी हमें शैक्षणिक योग्यता, कौशल, अनुभव इत्यादि की जरूरत होती है। इनमें से किसी-न-किसी का होना हमारे लौकिक दृष्टि से सफल होने के लिए जरूरी है।

यह ठीक है कि कुछ लोगों को यह सफलता तीर-तुक्के से भी मिल जाती है, लॉटरी जीतकर भी मिल जाती है, पर इनके माध्यम से मनुष्य को मात्र तात्कालिक लाभ प्राप्त होता है—इन्हें जीवन का नियम नहीं माना जा सकता। दीर्घकालिक सफलता, अपने जीवन की दिशा को पाने के लिए किए गए प्रयास सफल तो तभी हो पाते हैं, जब हमारे भीतर उस क्षेत्र में अपनी योग्यता को सिद्ध करने का जज्बा और पात्रता हो। सफलता प्राप्त करने के लिए या फिर अर्जित सफलता को स्थायी बनाने के लिए हमें संबंधित क्षेत्र में पात्रता की अत्यंत आवश्यकता होती है।

भारतीय संस्कृति की मूल विचारधारा इसी प्रश्न को उठाती है। वह यही है कि जब भौतिक क्षेत्र में बिना पात्रता के एक सामान्य-सी नौकरी नहीं मिलती तो आध्यात्मिक क्षेत्र में कोई भी सफलता, बिना पात्रता की परीक्षा दिए हमें कैसे मिल जाएगी? सूक्ष्म का, परोक्ष का जगत् यदि हमें इन

आँखों से न भी दिखे तो उससे उसका अस्तित्व असत्य सिद्ध नहीं हो जाता। किसी उपकरण के माध्यम से यदि हम प्राण की उपस्थिति को न भी दिखा सके तो उससे प्राण की उपस्थिति झूठी नहीं सिद्ध हो जाती। बहुत-सी चीजें हमें दिखाई नहीं पड़तीं, पर उससे उनका व उनके अस्तित्व का होना गलत सिद्ध नहीं हो जाता है।

भारतीय संस्कृति इसी सार्वभौम सत्य की ओर संकेत करती हुई नजर आती है। भगवान लोगों को दिखाई नहीं पड़ते, पर इससे उनका अस्तित्व असत्य नहीं हो जाता है। आध्यात्मिक उत्कर्ष भारतीय संस्कृति का शाश्वत उद्घोष है, पर उसकी प्राप्ति के लिए हमें अपने त्याग, समर्पण, श्रद्धा, विश्वास तथा पात्रता की परीक्षा देनी होती है। आज का समय भारतीय संस्कृति के इसी मूलमंत्र को अपने जीवन तथा व्यक्तित्व के माध्यम से परिभाषित करने की माँग करता हुआ नजर आता है।

परिस्थितियाँ आज विषम हैं, अंधकार घना है और लोगों की सोच एक व्यापक परिवर्तन की गुहार लगाती हुई दिखाई पड़ती है। ऐसे में हम भारतीय संस्कृति के अग्रदूत होने के नाते, उस संस्कृति का अग्रदूत होने के नाते, जिसके पुरोधा परमपूज्य गुरुदेव रहे, जिसके नवोन्मेष का चिंतन स्वामी विवेकानंद ने दिया, उसका अग्रदूत होने के नाते हम कुछ ऐसे प्रयास अवश्य कर सकते हैं, जो आज के परिप्रेक्ष्य में सामयिक भी कहे जा सकते हैं और जरूरी भी।

(1) समस्या का नहीं, समाधान का हिस्सा बनें—वर्तमान समय में लोगों की ऊर्जा का एक बहुत बड़ा अंश बस समस्याएँ ढूँढ़ने में, लोगों की कमियाँ निकालने में चला जाता है। इनके-उनके जीवन में गलतियाँ ढूँढ़ने में लोगों की इतनी ऊर्जा व्यर्थ चली जाती है कि वो अपने जीवन में फिर कोई सार्थक कार्य कर ही नहीं पाते। कुछ लोगों को कमी निकालने की, समस्या ढूँढ़ने की आदत पड़ जाती है तो कुछ को इसका शौक-सा लग जाता है कि यदि वो कहीं कमियाँ न निकालें तो उनको समय काटना मुश्किल हो जाता है। ऐसे में गलतियाँ निकालने के स्थान पर यह सोचना जरूरी है कि हमने अच्छा क्या किया है? यह सोचना जरूरी है कि जिस समस्या के विषय में हम बातें कर रहे हैं—उस समस्या के समाधान के लिए हमने स्वयं क्या किया है?

परमपूज्य गुरुदेव कहा करते थे—"शिकायतें लाना बच्चों का काम है, वयस्कों का काम तो समाधान ढूँढ़ना है। यदि हम जिंदगी भर समस्याएँ ही ढूँढ़ते रह जाएँगे, कमियाँ ही निकालते रह जाएँगे तो भला समाधान के लिए प्रयास कब करेंगे? इसलिए समस्याओं को ढूँढ़ने में समय व ऊर्जा नष्ट करने के स्थान पर, समाधान के लिए प्रयत्न करना ज्यादा जरूरी हो जाता है।

(2) थोड़ा करें पर कुछ तो करें—कई लोग समाधान तो ढूँढ़ लेते हैं और उस पर कार्य भी करना चाहते हैं, परंतु वे उसके लिए इतना ज्यादा समय मात्र योजनाएँ बनाने में लगा देते हैं कि उसके क्रियान्वयन के लिए उनके पास न समय बच पाता है और न सामर्थ्य। इसलिए ऐसे में जरूरी हो जाता है कि हम थोड़ा ही करें, पर कुछ तो करें। भारतीय संस्कृति जिस उत्कृष्टता की बात करती है, यह उसे ही अर्जित करने का एक महत्त्वपूर्ण आधार कहा जा सकता है।

(3) कल की सोचकर वर्तमान न बिगाड़ें—परमपूज्य गुरुदेव कहते थे कि बाल्यावस्था, युवावस्था व वृद्धावस्था मानसिक अवस्थाओं के नाम हैं—शारीरिक अवस्थाओं के नहीं। वे कहते थे कि जो आने वाले कल के सपने देखने में व्यस्त हैं—वे तो अभी बच्चे ही हैं, उनका बचपन गया नहीं है। जो गुजरे कल की चिंता करने में व्यस्त हैं, वे बूढ़े हो चले हैं—उम्र उनकी चाहे कुछ भी हो। परमपूज्य गुरुदेव कहते थे कि वस्तुतः युवा तो वे हैं, जो आज की सोचते हैं, आज के लिए योजना बनाते हैं और आज ही उस पर अमल करते हैं। वर्तमान को सँवारने का यह महत्त्वपूर्ण सूत्र भारतीय संस्कृति हमें प्रदान करती है।

इन बातों को यहाँ लिखने के पीछे का उद्देश्य यह भी है कि परमपूज्य गुरुदेव ने इसी भारतीय संस्कृति के जागरण के लिए भारतीय संस्कृति ज्ञान परीक्षा जैसे प्रकोष्ठ का चिंतन शांतिकुंज के लिए प्रदान करवाया। उद्देश्य एक ही था कि ऐसी परीक्षाओं के माध्यम से भारत का प्रत्येक विद्यार्थी भारतीय संस्कृति के मूलभूत चिंतन से परिचित हो सके।

भारतीय संस्कृति जिस आत्मिक एवं आध्यात्मिक उत्कृष्टता की बातें करती है, उसकी प्राप्ति इन सूत्रों को अपने जीवन में अपनाकर सहजता से की जा सकती है। वर्तमान समय में इसी को सामयिक आवश्यकता कहा जा सकता है। ❑

सद्गुरु के सान्निध्य में साधनामय जीवन



यह सुरदुर्लभ मानव शरीर इस जीवन की दिव्य संभावनाओं को साकार करने के लिए ईश्वर की ओर से मिला हुआ एक अनुपम उपहार है। इसे जीवन का सबसे बड़ा दुर्भाग्य कहा जाएगा, यदि हम इसके प्रति सजग-सचेष्ट नहीं हो पाए, इसके बहुमूल्य पलों को यों ही व्यर्थ नष्ट कर गए तथा बिना किसी सार्थक निष्कर्ष के इस जीवन का अवसान कर गए।

आद्यशंकराचार्य जी ने कहा था कि ये तीन चीजें बड़े सौभाग्य से मिलती हैं—मनुष्य जन्म, महापुरुषों का संसर्ग और मुमुक्षुत्व।

दुर्लभं त्रयमेवैतद्देवानुग्रहहेतुकम्।
मनुष्यत्वं मुमुक्षुत्वं महापुरुषसंश्रयः॥

—*(विवेक चूड़ामणि, 3)*

अर्थात—"मनुष्य जन्म, मोक्ष की इच्छा तथा महापुरुषों का संश्रय—ये तीन चीजें दुर्लभ हैं, जो दैवी अनुग्रह से मिलती हैं।"

गायत्री परिवार से जुड़े हर परिजन का सौभाग्य है कि उन्हें उपरोक्त दो चीजें सहज रूप में उपलब्ध हैं और तीसरी भी उनकी पहुँच में है, थोड़ा-सा सजग होकर इसके प्रति चैतन्य होना है और गुरु के बताए मार्ग पर चलते हुए समाज की सच्ची सेवा करते हुए आत्मकल्याण के पथ पर आगे बढ़ना है। सौभाग्यशाली हैं सभी गायत्री परिजन कि उन्हें समर्थ गुरु का दिशाबोध, मार्गदर्शन एवं दिव्य संरक्षण उपलब्ध है।

अपने गुरु से मिलने के बाद जीवन के दैवी स्वरूप व इसके आध्यात्मिक लक्ष्य के प्रति फिर कोई संशय नहीं रहना चाहिए; क्योंकि गायत्रीमय साक्षात् सवितास्वरूप परमपूज्य गुरुदेव एवं परमवंदनीया माताजी का ऋषियुग्म तो स्वयं दिव्यता का जाज्वल्यमान स्वरूप रहा है। परमपूज्य गुरुदेव के 80 वर्ष के जीवन एवं उनके भव्य एवं दिव्य व्यक्तित्व तथा अलौकिक कर्तृत्व को निहारने मात्र से मन में इस जीवन की अलौकिक संभावनाओं पर किसी तरह का संदेह नहीं रह जाता। उनके शिष्य एवं अनुयायी होने के नाते इस जीवन का हर पल एक जीवंत साधक के रूप में सार्थक दिशा में नियोजित होना चाहिए।

यदि ऐसा नहीं हो पा रहा है तो गहन-गंभीर समीक्षा की आवश्यकता है कि हमारे साधनात्मक प्रयास में कहाँ कमी या चूक रह रही है। कहीं साधना के नाम पर हम मात्र कर्मकांड की लकीर पीटने तक तो सीमित नहीं रह गए तथा तप-साधना के नाम पर अपने अहं का प्रदर्शन मात्र तो नहीं कर रहे हैं और सेवा के नाम पर स्वार्थ-कामनाओं के चक्कर में गुरुभक्ति को कलंकित तो नहीं कर रहे हैं?

कहीं गुरु को व्यक्ति मात्र तो नहीं मान बैठे हैं; क्योंकि देहधारी गुरु आवरण मात्र होता है, उसका चेतनात्मक स्वरूप तो ईश्वरमय होता है और वो वैसे ही व्यापक होता है, जैसे प्राणवायु, सविता देवता और स्वयं परमेश्वर। गुरु तत्त्व तो सर्वव्यापी एवं सर्वांतर्यामी सत्ता का नाम है। उपासना उस तत्त्व से जुड़ने की प्रक्रिया है, साधना उस चेतना को धारण करने की पात्रता का विकास है और आराधना उनके विराट स्वरूप की अर्चना-सेवा का नाम है।

परमपूज्य गुरुदेव ने अपनी आत्मकथा—'हमारी वसीयत और विरासत' में इस संदर्भ में विशद् एवं मार्मिक प्रकाश डाला है, जिस पर नित्य स्वाध्याय एवं चिंतन-मनन किया जाना अपेक्षित है, जब तक कि इसका मर्म आत्मसात् नहीं हो जाता। उनके शब्दों में गंगा, यमुना और सरस्वती के मिलने से त्रिवेणी संगम बनने और उसमें स्नान करने वाले का कायाकल्प होने की बातें कही गई हैं। बगुले का हंस और कौए का कोयल—आकृति से बदल जाना तो संभव नहीं, पर इस आधार पर विनिर्मित हुई अध्यात्म धारा का अवगाहन करने से मनुष्य का अंतरंग और बहिरंग जीवन असाधारण रूप में बदला जा सकता है, यह निश्चित है। यह त्रिवेणी उपासना, साधना-आराधना के समन्वय से बनती है।

यह तीनों मात्र क्रिया या कर्म नहीं हैं, जिन्हें इतने समय में, इस विधि से, इस प्रकार बैठकर संपन्न करते रहा जा सके।

ये चिंतन, चरित्र और व्यवहार में होने वाले उच्चस्तरीय परिवर्तन हैं, जिनके लिए अपनी शारीरिक और मानसिक गतिविधियों पर निरंतर ध्यान रखना पड़ता है। दुरितों के संशोधन में प्रखरता का उपयोग करना पड़ता है और अपनी विचारधारा में गुण, कर्म, स्वभाव को इस प्रकार अभ्यस्त करना पड़ता है, जैसे अनगढ़ पशु-पक्षियों को सरकस के करतब दिखाने के लिए जिस-तिस प्रकार प्रशिक्षत किया जाता है।

पूजा कुछ थोड़े समय की हो सकती है, पर साधना तो ऐसी है, जिसके लिए गोद के बच्चे को पालने की तरह उस पर निरंतर ध्यान रखना पड़ता है। फलवती वह तभी हो पाती है। जो लोग पूजा को बाजीगरी समझते हैं और जिस-तिस प्रकार के क्रिया-कृत्य करने भर के बदले ऋद्धि-सिद्धियों के दिवास्वप्न देखते हैं, वे एक बड़ी भूल करते हैं।

उपासना का मर्म उद्‌घाटित करते हुए पूज्य गुरुदेव ने लिखा है—ध्यान की सुविधा के लिए गायत्री को माता और सविता को पिता माना तो सही, पर साथ ही यह भी अनुभव किया गया कि वे सर्वव्यापी हैं। इसी मान्यता के कारण उनकी उपस्थिति को अपने रोम-रोम में और स्वयं का उनकी हर तरंग में घुल सकना संभव हो सका। मिलन का आनंद इससे कम में आता नहीं। यदि उन्हें व्यक्ति विशेष माना होता तो दोनों के मध्य अंतर बना ही रहता और घुलकर आत्मसात् होने की अनुभूति होने में बाधा ही बनी रहती।

यही गुरु के संदर्भ में भी सत्य है। वह हाड़-मांसधारी शरीर दिख सकता है, किंतु मूलत: वह व्यापक एवं समर्थ ईश्वरीय चेतना का नाम है, जिनके रचित साहित्य, प्रदत्त शिक्षाओं एवं जीवन दर्शन के प्रकाश में उनसे वैचारिक मार्गदर्शन तथा जीवन का प्रखर दिशा बोध प्राप्त किया जा सकता है।

साधना का मर्म उद्‌घाटित करते हुए गुरुदेव शिष्य-साधकों को साधना समर के लिए आह्वान करते हुए लिखते हैं—जन्मत: सभी अनगढ़ होते हैं। जन्म-जन्मांतरों के कुसंस्कार सभी पर न्यूनाधिक मात्रा में लदे होते हैं। वे अनायास ही हट या भाग नहीं जाते। गुरु-कल्प या पूजा-पाठ से भी यह प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। उनके समाधान का एकमात्र उपाय है—जूझना।

जैसे ही कुविचार उठें, उनके प्रतिपक्षी सद्‌विचारों की सेना को पहले से ही प्रशिक्षित कटिबद्ध रखा जाए और विरोधियों से लड़ने को छोड़ दिया जाए। जड़ जमाने का अवसर न मिले तो कुविचार या कुसंस्कार बहुत समय तक ठहरते नहीं। उनकी सामर्थ्य स्वल्प होती है। वे आदतों और प्रचलन पर निर्भर रहते हैं; जबकि सद्‌विचारों के पीछे तर्क, तथ्य, प्रमाण, विवेक आदि अनेकों का मजबूत समर्थन रहता है।

यही कारण है कि महर्षि पतंजलि ने योगसूत्र के साधनपाद में कुविचारों को नियंत्रित करने के लिए प्रतिपक्षी सकारात्मक भावनाओं को पोषण देने की प्रक्रिया बताई है।

वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम्।

(पा.यो.सू. 2/33)

इसलिए शास्त्रकारों की उक्ति ऐसे अवसरों पर खरी उतरती है, जिसमें कहा गया है कि सत्य ही जीतता है, असत्य नहीं। इसी बात को यों भी कहा जा सकता है कि परिपक्व किए गए सुसंस्कार ही जीतते हैं, आधाररहित कुसंस्कार नहीं। जब सरकस में शेर एवं बाघ जैसे भयावह जंतुओं को आश्चर्यजनक कौतुक-कुतूहल दिखाने के लिए प्रशिक्षित किया जा सकता है, तो कोई कारण नहीं कि अनगढ़ मन और जीवन क्रम को संकल्पित साधना के हंटर से सुसंस्कारी न बनाया जा सके।

साधना के बाद पूज्यवर, आराधना का मर्म स्पष्ट करते हुए शिष्य-साधकों को लोक-मंगल में निरत रहने के लिए कहते हैं। जीवन-साधना प्रकारांतर में संयम-साधना है, उसके द्वारा न्यूनतम में निर्वाह चलाया जाता है और अधिकतम बचाया जाता है। समय, श्रम, धन और मन मात्र इतनी ही मात्रा का शरीर तथा परिवार के लिए खरच करना पड़ता है, जिसके बिना काम न चले। काम न चलने की कसौटी है—औसत देशवासियों का स्तर। इस कसौटी पर कसने के उपरांत किसी भी श्रमशील और शिक्षित व्यक्ति का उपार्जन इतना हो जाता है कि काम चलाने के अतिरिक्त भी बहुत कुछ बच सके। इसी के सदुपयोग को आराधना कहते हैं।

सर्वव्यापी ईश्वर निराकार ही हो सकता है, उसे परमात्मा कहा गया है। परमात्मा अर्थात आदर्शों का समुच्चय। यह विराट ब्रह्म या विराट विश्व है। इस रूप में लोकसेवा ही विराट ब्रह्म की आराधना बन जाती है। विश्व उद्यान को सुखी-समुन्नत बनाने के लिए ही परमात्मा ने यह बहुमूल्य

जीवन देकर अपने युवराज की तरह यहाँ भेजा है। इसी की पूर्ति में ही जीवन की सार्थकता है। इसी मार्ग का श्रद्धापूर्वक अवलंबन करने से आध्यात्मिक उत्कर्ष का वह प्रयोजन सधता है, जिसे आराधना कहा गया है।

इसी क्रम में युग निर्माण के महत् संकल्प के रूप में युगऋषि का दिया सूत्र स्पष्ट है, जिसका क्रम है—व्यक्ति, परिवार एवं समाज निर्माण। शुभारंभ स्वयं से होना है, उसका प्रयोग परिवाररूपी गृहस्थ जीवन की प्रयोगशाला में किया जाना है और इसका क्रमिक रूप से विस्तार अपने परिवेश, समुदाय और समाज तक होना है। कहीं ऐसा तो नहीं कि हम आलस्य-प्रमाद एवं अज्ञानता के चलते इस क्रम को भूल बैठे हैं और अपने सुधार के प्रति सचेष्ट हुए बिना समाज निर्माण का ठेका ले बैठे हैं तथा सबको जबरन हाँकते फिर रहे हैं और अपने परिवार में भी संस्कारों के बीजारोपण की हमें सुध नहीं। सुधार एवं परिवर्तन का शुभारंभ स्वयं से होना है, इसलिए परमपूज्य गुरुदेव ने अपने सुधार को संसार की सबसे बड़ी सेवा तक करार दिया है।

युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव के रचित साहित्य के स्वाध्याय के प्रकाश में, उनकी अमृतवाणी के सत्संग तथा उनके दिव्य व्यक्तित्व-कर्तृत्व के संग ध्यान-साधना के पलों में मंत्रवत् गुरुवचनों पर नित्यप्रति गहन चिंतन, मनन एवं निदिध्यासन अपेक्षित है, जिसके आलोक में जीवन के सकल संशय, विक्षोभ, भ्रम एवं द्वंद्व तिरोहित हो सकें तथा हम गुरु की बताई उपासना, साधना व आराधना की त्रिवेणी में नित्य डुबकी लगाते हुए जीवन के रूपांतरण की पटकथा लिख सकें तथा गुरुसत्ता के प्रकाश-संवाहक के रूप में इस जीवन का सार्थक नियोजन कर सकें। ❑

एक व्यक्ति अपनी जिज्ञासा लेकर एक संत के पास पहुँचा और उनसे आग्रह करने लगा कि वे यह बताएँ कि सच्चे आनंद की प्राप्ति कैसे हो सकती है ? संत बोले—"बेटा! इन दिनों मैं थोड़ा व्यस्त हूँ। तुम ऐसा करना कि तीन माह बाद मुझसे मिलने के लिए आना, तब मैं तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दे पाऊँगा। तब तक तुम ऐसा करना कि एकांतसेवन करना, स्वाध्याय करना और परमात्मा के विषय में चिंतन-मनन करना।"

युवक के मन में अभीप्सा तीव्र थी, सो उसने संत के निर्देशों का अक्षरशः पालन किया। ऐसे ही तीन माह निकल गए। समय गुजरने के उपरांत वह संत से मिलने पहुँचा तो उनके चरण पकड़कर रोने लगा और बोला—"महाराज! आपने मेरी आँखें खोल दीं। मैं जब से एकांतवासी हुआ हूँ, स्वाध्याय में निरत हुआ हूँ और प्रभु की भक्ति में निमग्न हुआ हूँ, तब से सच्चे आनंद के सागर में ही गोते लगा रहा हूँ। अब तो भगवान के सिवा कुछ और दिखाई नहीं देता तथा इसके अतिरिक्त आनंद का और कोई स्रोत इस संसार में है भी नहीं।" संत मुस्कराकर बोले—"प्रश्न का उत्तर शब्दों से देना तो आसान है, पर जो ज्ञान अनुभव से प्राप्त होता है, वही सच्चे आनंद का स्रोत होता है।"

सच्ची भक्ति से होती है भगवत्प्राप्ति



भारत के आध्यात्मिक क्षितिज में ऐसे अगणित संत, ऋषि, योगी, भक्त आदि सितारे सदृश्य चमक रहे हैं, जिन्होंने अपनी सच्ची साधना से, भक्ति से, निर्गुण-निराकार ब्रह्म को सगुण-साकार रूप में प्रकट होने को विवश किया। निस्संदेह सगुण और निर्गुण ब्रह्म में कोई भेद नहीं।

ब्रह्म का निज स्वरूप तो निराकार और निर्गुण ही है, पर सत्य यह भी है कि भक्त के प्रेम के वशीभूत होकर निर्गुण-निराकार ब्रह्म सगुण-साकार रूप में भी प्रकट हो अपने भक्त को दर्शन देने को बाध्य होते हैं। विभिन्न शास्त्रों में ऐसे भक्तों के उदाहरण भरे पड़े हैं, जिन्होंने अपनी प्रबल प्रभुभक्ति से प्रभु को प्रसन्न किया और प्रभु ने भी अपने भक्त को उसी रूप में दर्शन दिए, जिस रूप में दर्शन पाने को भक्त ने, साधक ने अभिलाषा की।

जनार्दन स्वामी भी उन्हीं भक्तों में से एक रहे हैं, जो अपनी भक्ति के कारण प्रभु के सगुण-साकार रूप के प्रत्यक्ष दर्शन पाने में सफल हुए। जनार्दन स्वामी श्री दत्तात्रेय भगवान को अपना गुरु और आराध्य मानते थे। जनार्दन स्वामी एक उच्चकोटि के संत थे। उनकी आध्यात्मिक आभा की चहुँओर चर्चा थी। उस जमाने में उनकी आध्यात्मिक साधना का डंका चहुँओर बज रहा था। वे गुरु दत्तात्रेय के उपासक थे और उपास्यदेव के सगुण रूप का दर्शन उन्हें प्रत्यक्ष होता था।

ब्राह्ममुहूर्त में उठने के समय से लेकर मध्याह्न तक वे स्नान-संध्यावंदन, ध्यान-समाधि और श्री दत्त भगवान की सेवा में ही लगे रहते थे। मध्याह्न के बाद वे कचहरी का काम भी देखते थे। पुनः सायं-संध्या आदि करके रात में 'ज्ञानेश्वरी, अमृतानुभव' जैसे ब्रह्मज्ञान से भरे सद्ग्रंथों का स्वाध्याय-निरूपण आदि किया करते थे। उनका समाधि लगाने का स्थान ऐसे एकांत स्थान में था कि उस ओर कोई भी जा नहीं पाता था।

श्री दत्त भगवान के सगुण साक्षात्कार के प्रभाव से समता, शांति और अनासक्ति का उनमें अखंड निवास था। उनके शरीर से विलक्षण तेज निकलता था। बाह्य कर्मों द्वारा धुलकर स्वच्छ और अंतर्ज्ञान से उज्ज्वल हुए, भक्ति, ज्ञान, वैराग्य की मूर्ति श्री जनार्दन स्वामी को हिंदू-मुसलमान सभी वंदनीय मानते थे। जनार्दन स्वामी की भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान दत्तात्रेय ने उन पर अनुग्रह किया और उन्हें स्वरूपानुभव देकर कृतार्थ किया। भगवान दत्तात्रेय जनार्दन स्वामी के लिए सब कुछ थे, गुरु भी और आराध्य भी।

एक बार अपने गुरु और आराध्य के प्रत्यक्ष दर्शन पाने को वे बड़े ही व्याकुल थे। गुरु से मिलने की उनमें ऐसी तड़प पैदा हुई कि सद्गुरु के चिंतन में वे तीनों अवस्थाएँ भूल गए। भगवान तो भाव के भूखे हैं। उन अंतर्यामी भगवान से जनार्दन स्वामी की तड़प छिपी न रह सकी। प्रभु दत्तात्रेय अपने शिष्य और भक्त की सच्ची भक्ति को देखकर प्रकट हुए और उनके मस्तक पर उन्होंने अपना हाथ रखा।

श्री दत्त भगवान के हाथ का स्पर्श पाते ही जनार्दन स्वामी को संपूर्ण बोध हुआ। उन्हें आत्मबोध हुआ। कर्म करके भी जो अकर्त्ता है, उसी ने 'अकर्त्तात्म बोध' करा दिया। जो निर्गुण-निराकार है, उसी ने उन्हें अपना सगुण-साकार रूप भी दिखला दिया। जो अव्यक्त और अविकारी हैं, वे प्रभु ही भक्त की भक्ति से व्यक्त हुए।

आत्मबोध होते ही देह में रहकर भी विदेहता कैसे होती है, यह भी तत्त्वतः जनार्दन स्वामी को ज्ञात हुआ। गृहस्थाश्रम को छोड़े बिना, कर्मरेखा को लाँघे बिना, अपने निज कर्त्तव्य से विमुख हुए बिना, अपने पारिवारिक-सामाजिक दायित्व से पलायन किए बिना और अपने निज व्यापार में लगे रहने की अवस्था में ही, अपनी सच्ची साधना व भगवद्भक्ति के बल पर उन्हें सब कुछ प्राप्त हो गया।

वह दिव्य बोध उनकी आत्मा को प्राप्त हो गया। वह दिव्य बोध उनके मन को प्राप्त हो गया। फलस्वरूप उनके मन का मनपन छूट गया। प्रभु के दिव्य स्पर्श से प्राप्त दिव्य अनुभूति को सँभालना जनार्दन स्वामी के लिए कठिन हो गया। वे मूर्च्छित हो गए।

उनके गुरु व भगवान दत्तात्रेय ने उन्हें तत्त्वत: चैतन्य किया और कहा कि इस दिव्य अनुभूति को आत्मसात् करके तुम निज बोध में रहो। फिर भगवान का पूजन-वंदन करके जब जनार्दन स्वामी श्री दत्तात्रेय भगवान के चरणों में गिरे, तभी गुरु दत्तात्रेय अपनी योगमाया से अदृश्य हो गए। इसी दिव्य अनुभूति में श्री जनार्दन स्वामी जीवनपर्यंत रहे। वे सदा प्रभुभक्ति में निमग्न रहे एवं समाधि की अवस्था में प्रभुदर्शन का सौभाग्य पाते रहे और इसी भगवद्भक्ति का प्रचार जनमानस के बीच करते रहे। ❑

श्रेणिक पुत्र मेघ ने भगवान बुद्ध से मंत्र-दीक्षा ली और उनके साथ ही रहकर तपस्या में लग गया। विरक्त मन को उपासना से असीम शांति मिलती है। निरर्थक जीवन में उज्ज्वल आशा की मणि-मुक्ता की-सी ज्योति झिलमिलाने लगती है और मन-वाणी-चित्त अलौकिक स्फूर्ति से भर जाते हैं। साधक को तपस्या में रस मिलने लगता है। मेघ भी इस आनंद से सराबोर कर देने वाले उपक्रम में अधिकांश समय लगाया करता।

बुद्ध की दृष्टि तीक्ष्ण थी। वे जानते थे कि रस सब एक हैं, चाहे वे भौतिक हों या आध्यात्मिक। रस की आशा चिरनवीनता से बँधी है, इसीलिए जब तक नयापन है, तब तक उपासना में रस स्वाभाविक है, किंतु यदि आत्मोत्कर्ष की निष्ठा न रही तो मेघ का मन उचट जाएगा; अतएव उसे उसकी निष्ठा को सुदृढ़ कराने वाले तप की आवश्यकता है। वे अप्रत्यक्ष रूप से मेघ को बार-बार उधर धकेलने लगे। मेघ ने कभी रूखा भोजन नहीं किया था। अब उसे रूखा भोजन दिया जाने लगा, कोमल शय्या के स्थान पर भूमि शयन, आकर्षक वेशभूषा के स्थान पर मोटे वल्कल वस्त्र और सुखद सामाजिक संपर्क के स्थान पर राजगृह आश्रम की स्वच्छता, सेवा-व्यवस्था; एक-एक कर इन सब में जितना अधिक मेघ को लगाया जाता, उसका मन उतना ही उत्तेजित होता, महत्त्वाकांक्षाएँ सिर पीटतीं और अहंकार बार-बार आकर खड़ा होकर कहता—"ओ रे मूर्ख मेघ! कहाँ गया वह रस। जीवन के सुखोपभोग को छोड़कर कहाँ आ फँसा ?"

मन और आत्मा का द्वंद्व निरंतर चलते-चलते एक दिन वह स्थिति आ गई, जब मेघ ने अपनी विरक्ति का अस्त्र उतार फेंका और यथार्थता के दोनों ही पहलुओं को स्वीकारते कहने लगा—"भगवन्! मुझे तप कराइए, जिससे मेरा अंत:करण पवित्र बने।" तथागत मुस्कराए और बोले—"तात! यही तो तप है। विपरीत परिस्थितियों में भी मानसिक स्थिरता—यह गुण है। जिसमें आ गया, वही सच्चा तपस्वी, वही स्वर्ग विजेता है। उपासना तो उसका एक अंग मात्र है।" मेघ की आँखें खुल गईं और वह एक सच्चे योद्धा की भाँति मनोनिग्रह के अभ्यास में जुट गया।

पर्व विशेष

सृष्टि के जन्म का महापर्व

पौराणिक कथाएँ कहती हैं कि चैत्र शुक्ल प्रतिपदा को सृष्टि का उद्भव हुआ। सृष्टि की उत्पत्ति के विषय में, विश्व-ब्रह्मांड की जन्मकथा के बारे में मानव सदा से जिज्ञासु रहा है। आकाश में टिमटिमाते ये तारों के दीपक क्या हैं, कितनी दूर हैं? विश्व का विस्तार कहाँ तक है? आदि जिज्ञासाएँ मानव के जन्म के साथ जन्मी हैं। ऋग्वेद का नासदीयसूक्त तो जैसे सृष्टि ज्ञान का बखान है। इसके कवि ऋषि परमेष्ठिन्-प्रजापति ने अपने इस सूक्त को तीन भागों में बाँटा है—सृष्टिपूर्व अवस्था, जीवोत्पत्ति और सृष्टिनिर्मिति की अगम्यता। सूक्त का आरंभ है—

नासदासीन्नो सदासीत् तदानीं नासीद्रजो
नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः
किमासीद् गहनं गभीरम्॥ 1॥

अर्थात सृष्टि के मूलारंभ में न असत् का अस्तित्व था और न ही सत् का। उसी तरह अंतरिक्ष व आकाश का भी कहीं कोई अस्तित्व नहीं था। ऐसी स्थिति में कौन किसका आश्रय बना? किसके सुख के लिए यह सारा बना? क्या उस समय अथाह जल का भी अस्तित्व था?

इस सूक्त के अंत में ऋषि-कवि सृष्टि उद्भव की अगम्यता के बारे में कहते हैं—

को अद्धा वेद क इह प्र वोचत्
कुत आजाता कुत इयं विसृष्टिः।
अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाथा
को वेद यत आबभूव॥ 6॥
इयं विसृष्टिर्यत् आबभूव
यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो
अङ्ग वेद यदि वा न वेद॥ 7॥

—*ऋग्वेद 10.129/6-7*

अर्थात यह सृष्टि किससे उत्पन्न हुई, किसके लिए हुई, इसे वस्तुतः कौन जानता है? देवता भी बाद में पैदा हुए, फिर जिससे यह सृष्टि उत्पन्न हुई, उसे कौन जानता है?

ऋग्वेद में ही एक अन्य स्थान पर (1.35.6) एक ऋषि ने तो जिज्ञासापूर्ण चुनौती भी दे डाली। उसने कहा—**'इह ब्रवीतु य उ तच्चिकेतत्'** यदि यह सब जानने वाले कोई हैं, तो यहाँ आकर बताएँ? वेदों के साथ उपनिषदों एवं ब्राह्मण ग्रंथों में भी ऐसी ही जिज्ञासाएँ अनेक स्थानों पर हैं।

पुरातन ऋषियों की इस जिज्ञासा के समाधान हेतु अनेक प्रयास होते रहे। आधुनिक वैज्ञानिकों ने भी इसके लिए प्रयास किए। पिछले कई दशकों में खगोल भौतिकी और नाभिकीय भौतिकी के क्षेत्र में हुए अनुसंधान-प्रयासों के निष्कर्ष के रूप में वैज्ञानिकों ने इन सवालों का उत्तर खोजने की कोशिश की कि सृष्टि की उत्पत्ति कैसे हुई। इसके पहले द्रव्य ऊर्जा व दिक्-काल की क्या स्थिति थी? क्या विश्व का विस्तार निरंतर जारी रहेगा अथवा सिकुड़ते हुए फिर से अपने आरंभ की स्थिति में पहुँच जाएगा?

चैत्र शुक्ल प्रतिपदा (इस वर्ष 2 अप्रैल) अर्थात सृष्टि के जन्मोत्सव के अवसर पर इन सब बिंदुओं पर विमर्श—सृष्टि का जन्मदिन मनाने की दिशा में अनूठी पहल है। ब्रह्मपुराण के अनुसार—**'चैत्रमासि जगद्ब्रह्मा ससर्ज प्रथमेहनि'** अर्थात चैत्र मास के शुक्ल पक्ष के प्रथम दिन ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना की तो इस सृष्टि-जन्मोत्सव को क्यों न हम सब सृष्टि ज्ञान महोत्सव का रूप दें।

इसका ऋषिप्रणीत ज्ञान तो हमें पुरातनकाल से प्राप्त था, लेकिन इसका वैज्ञानिक ज्ञान हमें कुछ ही दशकों से मिलना आरंभ हुआ है। अभी कुछ दशक पहले तक प्रकाश-किरणों की केवल एक खिड़की से विश्व-ब्रह्मांड का अवलोकन संभव था। मगर दूसरे महायुद्ध के समय से विद्युत चुंबकीय विकिरण के अनुसंधान के माध्यम से दूसरी संभावनाएँ भी खुलती गईं। अब तो वायुमंडल के ऊपर के अंतरिक्ष से भी ब्रह्मांड का अवलोकन करना संभव हो गया है।

विश्व की महान और शाश्वत परंपराओं का धनी भारत देश भले ही अपनी पहचान बताने वाली बातों को भूल गया हो, लेकिन कुछ बातें ऐसी भी हैं, जिनका स्वरूप आज भी वैसा ही दिखाई देता है, जैसा विश्वविजयी भारत का था। हम भले ही अपने शुभ कार्यों में अँगरेजी तिथियों का उल्लेख करते हों, लेकिन उन तिथियों का उन शुभ कार्यों से कोई संबंध नहीं रहता। हम जानते हैं कि भारत में जितने भी त्योहार एवं मांगलिक कार्य किए जाते हैं, उन सभी में केवल भारतीय कालगणना को ही प्रधानता दी जाती है।

इसका आशय स्पष्ट है कि भारतीय ज्योतिष उस कार्य के गुण और दोष को भली भाँति प्रकट करने की क्षमता रखता है। किसी अन्य कालगणना में यह संभव ही नहीं है। भारतीय कालगणना के अनुसार मनाए जाने वाले त्योहारों के पीछे कोई-न-कोई प्रेरणा अवश्य विद्यमान है। हर त्योहार जहाँ नीरोग रहने का संदेश देता है तो वहीं लंबे समय से दूर रहने वाले लोगों को मिलाने का काम भी करता है। हम जानते हैं कि हिंदी के अंतिम मास फाल्गुन में वातावरण भी वर्ष समाप्ति का संकेत देता है, साथ ही नववर्ष के प्रथम दिन से ही वातावरण सुखद भी हो जाता है।

हमारे ऋषि-मुनि कितने श्रेष्ठ हैं, जिन्होंने ऐसी कालगणना विकसित की, जिसमें कब क्या होना है, इस बात की पूरी जानकारी समाहित है। पिछले दो हजार वर्षों में अनेक देशी और विदेशी राजाओं ने अपनी साम्राज्यवादी आकांक्षाओं की तुष्टि करने तथा इस देश को राजनीतिक दृष्टि से पराधीन बनाने के प्रयोजन से अनेक संवतों को चलाया, किंतु भारत राष्ट्र की सांस्कृतिक पहचान केवल विक्रमी संवत् के साथ ही जुड़ी रही।

अँगरेजी शिक्षा-दीक्षा और पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव के कारण आज भले ही सर्वत्र ईसवी संवत् का बोलबाला हो और भारतीय तिथि-मासों की कालगणना से लोग अनभिज्ञ होते जा रहे हों, परंतु वास्तविकता यह भी है कि देश के सांस्कृतिक पर्व-उत्सव तथा भगवान राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, गुरुनानक आदि महापुरुषों की जयंतियाँ आज भी भारतीय कालगणना के हिसाब से ही मनाई जाती हैं, ईसवी संवत् के अनुसार नहीं। विवाह-मुंडन का शुभ मुहूर्त हो या श्राद्ध-तर्पण आदि सामाजिक कार्यों का अनुष्ठान—ये सब भारतीय पंचांग पद्धति के अनुसार ही किया जाता है, ईसवी सन् की तिथियों के अनुसार नहीं।

भारतीय नववर्ष का अध्ययन किया जाए तो चारों तरफ नई उमंग की धारा प्रवाहित होती हुई दिखाई देती है—जहाँ प्रकृति अपने पुराने आवरण को उतारकर नए परिवेश में आने को आतुर दिखाई देती है तो वहीं भारतमाता अपने पुत्रों को धन-धान्य से परिपूर्ण करती हुई दिखाई देती है।

भारतीय नववर्ष के प्रथम दिवस पूजा-पाठ करने से असीमित फल की प्राप्ति होती है। कहा जाता है कि शुभ कार्य के लिए शुभ समय की आवश्यकता होती है और यह शुभ समय निकालने की सही विधा केवल भारतीय कालगणना में ही समाहित है। भारतीय नववर्ष का पहला दिन यानी सृष्टि का आरंभ दिवस है।

इतनी विशेषताओं को समेटे हुए हमारा नववर्ष वास्तव में हमें कुछ नया करने की प्रेरणा देता है। वास्तव में यह वर्ष का सबसे श्रेष्ठ दिवस है। नववर्ष का प्रारंभ चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से माना जाता है। ब्रह्म पुराण के अनुसार पितामह ब्रह्मा ने इसी दिन से सृष्टि-निर्माण प्रारंभ किया था, इसलिए यह सृष्टि का प्रथम दिन है। इसकी कालगणना बड़ी प्राचीन है। यह गणना ज्योतिष विज्ञान के द्वारा निर्मित है।

कष्ट ही तो वह प्रेरक शक्ति है, जो मनुष्य को कसौटी पर परखती है और आगे बढ़ाती है।

आधुनिक वैज्ञानिक भी सृष्टि की उत्पत्ति का समय एक अरब वर्ष से अधिक बता रहे हैं। जो भारतीय कालगणना की शाश्वत उपयोगिता का प्रमाण देता है। हिंदू शास्त्रानुसार इसी दिन से ग्रहों, वारों, मासों और संवत्सरों का प्रारंभ गणितीय और खगोलशास्त्रीय संगणना के अनुसार माना जाता है।

भारतवर्ष में वसंत ऋतु के अवसर पर नूतन वर्ष का आरंभ मानना इसलिए भी हर्षोल्लासपूर्ण है, क्योंकि इस ऋतु में चारों ओर हरियाली रहती है तथा नवीन पत्र-पुष्पों द्वारा प्रकृति का नवश्रृंगार किया जाता है। इसी श्रृंगारित भाव से हम सभी बहुत पहले से प्राकृतिक नववर्ष मनाते रहते हैं और आगे भी यह परंपरा कायम रहे, यही हमें प्रयास करना है। हमें अपने सांस्कृतिक मूल्यों को बनाए एवं बचाए रखकर इसको क्रियान्वयन करने का प्रयास करना चाहिए। ❑

सच्ची साधना से साधक को मिलती है मंजिल



देवालय में श्रीकृष्ण जन्माष्टमी का पावन पर्व पूरे धूम-धाम से मनाया जा रहा था। बाल, वृद्ध, युवा, स्त्री-पुरुष सभी हर्षोल्लास के साथ इस उत्सव को मनाने के लिए एक देवालय में एकत्रित हुए थे। रात्रि के बारह बजते ही भगवान के प्राकट्य की उद्घोषणा हुई और उसी के साथ देवालय में घंटा-घड़ियाल, शंख, ढोल, मृदंग आदि एक साथ बज उठे। वहाँ उपस्थित सभी भक्त गण भगवान के प्राकट्य की खुशी में ढोल, मृदंग की थाप के साथ नृत्य करने लगे। सबके आनंद की कोई सीमा न थी। घंटों सभी नृत्य-गान में डूबे रहे।

उसी बीच पूर्ण विधान के साथ भगवान का अर्चन, वंदन, पूजन भी होता रहा। एक बार फिर से घंटा-घड़ियाल, ढोल, मृदंग, शंख बज उठे। भावविभोर होकर सबने भगवान की आरती उतारी। तत्पश्चात भगवान को अर्पित छप्पन प्रकार के भोगों को वहाँ उपस्थित भक्तों, श्रद्धालुओं को प्रसाद के रूप में वितरित किया गया। उन्हीं श्रद्धालुओं में रंगनाथ भी शामिल थे, जो प्रसाद पाकर अब अपने गंतव्य की ओर चल पड़े थे। उनका हृदय हर्षोल्लास से उफन रहा था।

भगवान के प्राकट्य पर्व समारोह में शामिल होकर उनका हृदय आनंद से उमगता जाता था और वे अपने रास्ते पर बढ़े चले जाते थे। रात्रि के ठीक ढाई बजे वे घर पहुँचे। भगवान के दिव्य स्वरूप का स्मरण-ध्यान करते-करते वे सोने को बिस्तर पर लेट गए। क्या इस जन्म में मुझे भगवत्प्राप्ति हो सकेगी या यह जन्म भी निष्फल ही चला जाएगा? जीवन के अमूल्य 30 वर्ष बीत गए, पर अब तक मैंने भगवत्प्राप्ति के लिए कोई प्रयास-पुरुषार्थ भी तो नहीं किया? यह सोच-सोचकर उन्हें आत्मग्लानि हो रही थी। उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हो रहा था कि भगवत्प्राप्ति के लिए अब तक मैंने कुछ क्यों नहीं किया। इस जीवन का पल-पल बीता जा रहा है। पता नहीं कब इस क्षणभंगुर मानव जीवन का, नश्वर शरीर का अंत हो जाए?

इसी ग्लानि और पश्चात्ताप में वे सिसकियाँ भरने लगे। उनकी आँखों से आँसू बहते जाते थे और वे रोए जाते थे। इन्हीं भावों के साथ वे गहरी निद्रा में चले गए। गहरी निद्रा में ही रंगनाथ ने एक दिव्य स्वप्न देखा। उन्होंने देखा कि उनका शरीर वायु की तरह हलका हो चुका है। उनका शरीर अब भौतिक नहीं रहा। वे अभौतिक, अप्राकृत हो चुके हैं। उनका सूक्ष्मशरीर ऊपर उठता हुआ चला जा रहा है। कई सागर-सरिताओं, वनों-उपवनों के ऊपर से होते हुए वे आकाश की ओर बढ़े चले जा रहे हैं। अंततः वे आकाश मार्ग से होते हुए एक ऐसे दिव्य लोक में उतर आए हैं, जहाँ दूर-दूर तक पर्वत-शृंखलाएँ हैं, पर्वतमालाएँ हैं। चारों तरफ बरफ की सफेद चादर-सी बिछी हुई है। चारों तरफ चंपा, चमेली, रजनीगंधा, रातरानी आदि सुगंधित पुष्पों की खुशबू फैली हुई है।

उन्होंने देखा कि वहाँ चंदन व देवदार के वृक्ष शोभायमान हैं। वहाँ आस-पास खिले हुए ब्रह्मकमल की शोभा देखते ही बनती है। वहाँ स्थित ब्रह्मसरोवर में सहस्रदल कमल खिले हुए हैं। सहस्रदल वाले कमलों के पराग से वासित शीतल मंद-सुगंध वायु प्रवाहित हो रही है। चंद्रमा अपनी संपूर्ण कलाओं के साथ आकाशमंडल में शोभायमान है। चंद्रमा की शीतल किरणों से नहाकर पूरा क्षेत्र जगमगा उठा है। अचानक उन्होंने देखा कि एक हजार दल वाला कमल एक प्रकाशपुंज के समान जगमगा रहा है। वहाँ पर चाँदी की तरह चमकता हुआ सिंहासन है। वह सिंहासन चंद्रमा की चाँदनी से और भी चमकने लगा है। तभी अचानक उन्होंने देखा कि अंतरिक्ष में मेघों के बीच मेघवर्ण वाले भगवान श्रीहरि प्रकट हुए।

उन्होंने स्वप्न में देखा कि आकाशमंडल से भगवान विष्णु अपने दिव्य चतुर्भुज प्रकाश रूप में उतर रहे हैं। उनके दिव्य रूप का दर्शन कर रंगनाथ के रोम-रोम पुलकित हो रहे हैं। उनके हृदयकमल खिल उठे हैं। भगवान के उस परम दिव्य सौंदर्य को देखकर रंगनाथ की आत्मा अपूर्व

आनंद से आह्लादित होने लगी है। भगवान चाँदी की तरह चमक रहे उसी सिंहासन पर आ विराजे। भगवान की कांति मेघ के समान श्यामल थी। कमलदल के समान उनकी विशाल आँखें थीं। वे पीत वस्त्र से सुशोभित थे। गले में सुंदर वनमाला धारण किए हुए थे। श्रीवत्स का चिह्न, बहुमूल्य रत्नों से सजे हुए किरीट-कुंडल नयनाभिराम थे। उनके हाथों में चक्र, गदा और शंख की शोभा देखते ही बनती थी।

रंगनाथ भगवान के इस अलौकिक रूप का दर्शन पाकर अभिभूत होने लगे। उनकी आँखों से अश्रुपात होने लगा। उन्होंने देखा कि वहाँ पास में ही सुरसरि गंगा प्रवाहित हो रही है। रंगनाथ गंगा की धार में स्नान कर दिव्य शरीर को धारण करने लगे। सुरसरि गंगा की धार पर पड़ती चंद्रमा की शीतल चाँदनी वहाँ के सौंदर्य में चार चाँद लगा रही थी। चंद्रमा की धवल चाँदनी में नहाकर रंगनाथ की आत्मा निर्मल हो रही थी। उनके मन के सारे कषाय-कल्मष धुल गए।

वे अब वहाँ रखे एक स्वर्णपात्र में उसी गंगाजल को भरकर उससे भगवान श्रीहरि के चरण धो रहे थे। वहाँ रखे सुगंधित चंदन का उनके चरणों व दिव्य भाल पर लेपन कर रहे थे। वहाँ उगे हुए तुलसी के पौधे से तुलसीदल तोड़कर उनके चरणों पर अर्पित कर रहे थे। तुलसीदल से बनी माला उनके गले में अर्पित कर रहे थे। चंपा, चमेली, ब्रह्मकमल आदि विभिन्न प्रकार के सुगंधित पुष्प, उनके चरणों में अर्पित कर रहे थे।

तत्पश्चात वे वहाँ रखे आम, अमरूद, केले आदि ताजे फल अर्पित करने लगे व उन्होंने भगवान को धूप, दीप, नैवेद्य भी अर्पित किया। फिर वहाँ रखे स्वर्ण थाल में सोने के दीये में घी से जलाकर भगवान की आरती-वंदना की। वे आरती किए जा रहे थे व अतिशय आनंद के कारण उनके नेत्रों से अश्रुपात भी होने लगा। उन्होंने देखा कि वे आरती के पश्चात भगवान के चरणों से लिपटकर रोए जा रहे हैं। वे अपने आँसुओं से मानो भगवान के चरण पखार रहे हों और उनकी आत्मा भगवान की स्तुति करते हुए गाए जा रही है—

शान्ताकारं भुजगशयनं पद्मनाभं सुरेशं
विश्वाधारं गगनसदृशं मेघवर्णं शुभाङ्गम्।
लक्ष्मीकान्तं कमलनयनं योगिभिर्ध्यानगम्यं
वन्दे विष्णुं भवभयहरं सर्वलोकैकनाथम्॥

अर्थात जिनकी आकृति अतिशय शांत है, जो शेषनाग की शय्या पर शयन किए हुए हैं, जिनकी नाभि में कमल है, जो देवताओं के भी ईश्वर और संपूर्ण जगत् के आधार हैं, जो आकाश के सदृश सर्वत्र व्याप्त हैं, नीलमेघ के समान जिनका वर्ण है, अतिशय सुंदर जिनके संपूर्ण अंग हैं, जो योगियों द्वारा ध्यान करके प्राप्त किए जाते हैं, जो संपूर्ण लोकों के स्वामी हैं, जो जन्म-मरण रूप भय का नाश करने वाले हैं, ऐसे लक्ष्मीपति, कमलनेत्र भगवान विष्णु को मैं प्रणाम करता हूँ।

फिर रंगनाथ ने स्तुति करते हुए आगे कहा—

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्र रुद्रमरुतः स्तुन्वन्ति दिव्यैः स्तवै-
र्वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः।
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो-
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणादेवाय तस्मै नमः॥

अर्थात ब्रह्मा, वरुण, इंद्र, रुद्र और मरुद्गण दिव्य स्तोत्रों द्वारा जिनकी स्तुति करते हैं, सामवेद के गाने वाले अंग, पद, क्रम और उपनिषदों के सहित वेदों द्वारा जिनका गान करते हैं, योगीजन ध्यान में स्थित तद्गत हुए मन से जिनका दर्शन करते हैं, देवता और असुर गण कोई भी जिनके अंत को नहीं जानते, उन (परम पुरुष नारायण) देव के लिए मेरा नमस्कार है।

स्तुतिगान पूर्ण होते ही रंगनाथ ने देखा कि भगवान श्रीहरि अतिशय स्नेह से उनके सिर पर हाथ फेर रहे हैं। श्रीहरि के स्पर्श से उनके शरीर, मन व आत्मा में दिव्यता का, पवित्रता का, आनंद का अलौकिक ऊर्जा का संचार होने लगा। श्रीहरि के स्पर्श से उनकी आत्मा-ज्योतिर्मय हो जगमगा उठी।

प्रभु ने फिर उनसे बड़ी ही मीठी वाणी में स्नेहपूर्वक कहा—''वत्स रंगनाथ! तुमने अपने पूर्वजन्म में मुझे पाने के लिए बहुत ही कठोर तप किया था। तुम्हारे कुछ प्रारब्ध संस्कार शेष रह गए थे, जिसके फलस्वरूप तुम्हें पूर्वजन्म में मेरी भक्ति प्राप्त न हो सकी थी, पर अब वह समय निकट ही है, जब निष्काम भक्ति के द्वारा तुम मुझे इसी जन्म में प्राप्त कर सकोगे। तुम नित्य गायत्री जप के साथ त्रिकाल संध्यावंदन करना।''

भगवान आगे बोले—''वत्स! छंदों में मैं गायत्री छंद हूँ, अस्तु गायत्री मंत्रजप के द्वारा तुम मेरी ही उपासना कर रहे होगे। गायत्री मंत्रजप के साथ ही तुम 'ॐ नमो नारायणाय'

मंत्र का भी नित्य जप किया करना। तुम नित्य अग्निहोत्र तथा शास्त्रों का स्वाध्याय करना। मैं विष्णु हूँ अर्थात विश्व के अणु-अणु में व्याप्त हूँ। मैं ब्रह्मांड के अणु-अणु में व्याप्त हूँ। यह अखिल विश्व-ब्रह्मांड मेरा ही भौतिक विस्तार है। यह सृष्टि मेरी ही भौतिक अभिव्यक्ति है। इसलिए तुम मुझे मूर्तियों व देवालयों में ही सीमित न समझना। तुम जीव सेवा के द्वारा भी मुझ नारायण की ही सेवा कर रहे होगे। मैं गुरुओं का भी गुरु हूँ। इसलिए तुम मुझे गुरु व आराध्य, दोनों ही रूपों में वरण कर अपने हृदय में मेरा नित्य ध्यान किया करना।

भगवान श्रीहरि की यह दिव्य वाणी रंगनाथ के कानों से होती हुई आत्मा तक उतर आई थी। इसी के साथ ब्राह्ममुहूर्त में उनकी निद्रा भंग हुई। उस दिव्य स्वप्न को स्मरणकर उनका मन अभी भी आनंदातिरेक में डूबा हुआ था। उनके लिए यह कोई सामान्य स्वप्न नहीं था। यह तो स्वप्न के रूप में साक्षात् भगवान का दिव्य संदेश था कि उन्हें अब भगवत्प्राप्ति के लिए करना क्या है। ऐसे दिव्य स्वप्न शुद्ध, सरल हृदय वाले साधक को ही होते हैं।

ऐसे स्वप्न के द्वारा भगवान अक्सर साधकों को दर्शन व मार्गदर्शन देते हैं। रंगनाथ जी को जीवन के अंतिम क्षण तक उस दिव्य स्वप्न का एहसास व आनंद होता रहा मानो वह कल की ही बात हो। रंगनाथ जी ने भगवान के कहे अनुसार अपनी नई दिनचर्या प्रारंभ की। नित्य त्रिकाल गायत्री मंत्र के साथ संध्यावंदन, 'ॐ नमो नारायणाय' मंत्र का जप व हृदय में भगवान श्रीहरि के दिव्य चतुर्भुज रूप का ध्यान वे करने लगे।

साथ ही शास्त्रों का स्वाध्याय, दान, परोपकार, ईश्वर भाव से जीव सेवा करने लगे और वर्षों बाद वह घड़ी भी आई, जब उन्हें आत्मसाक्षात्कार हुआ, आत्मबोध हुआ। उन्हें अपने सत्-चित्-आनंदस्वरूप का बोध हुआ। उनका जीवन, उनका पल-पल, क्षण-क्षण अलौकिक आनंद से भर उठा।

सचमुच यदि रंगनाथ की तरह साधक में भगवान को पाने की सच्ची प्यास हो, पुरुषार्थ हो तो एक-न-एक दिन साधक को आत्मसाक्षात्कार के रूप में अपनी मंजिल मिल ही जाती है। इसमें निश्चित ही कोई संशय नहीं, कोई संदेह नहीं। ❑

एक बार एक घुड़सवार एक बस्ती से होकर जा रहा था। मार्ग में एक चोर का घर पड़ा। उसके बरामदे में एक तोता पिंजरे में बंद था, जो उसे देखकर बोला—''पकड़ो इसे। इसका सारा माल लूट लो।'' थोड़ा आगे बढ़ने पर उसने देखा कि एक और झोंपड़ी है, वहाँ भी एक तोता बंद है, पर यह तोता उसे देखकर बोला—''आओ बंधु! थक गए होगे, थोड़ा विश्राम कर लो।''

घुड़सवार को बड़ा आश्चर्य हुआ और वह वहीं बैठ गया। कुछ समय पश्चात उस झोंपड़ी के अंदर से एक साधु निकले और उसकी कुशल-क्षेम पूछने लगे। घुड़सवार ने उन्हें सारा वृत्तांत कह सुनाया और उनसे दोनों तोतों के भिन्न व्यवहार का कारण पूछा। साधु के उत्तर देने से पूर्व उनका तोता बोला—

अहं मुनीनाम् वचनं शृणोमि, शृणोत्ययं यद् यवनस्य वाक्यं।
न चास्य दोषो न च मे गुणो वा, संसर्गजा दोषगुणाः भवन्ति॥

अर्थात मैं साधुओं की वाणी सुनता हूँ और इसीलिए भला बोल रहा हूँ। वह तोता चोर-डाकुओं की बातें सुनता है, इसीलिए वैसा ही बोलता है। न मैं भला हूँ और न वह बुरा है, सत्य यही है कि अच्छाई और बुराई संगत से ही उपजते हैं। घुड़सवार की समझ में आ गया कि सत्संग से सज्जन बनते हैं और कुसंग से दुर्जन।

सबके लिए जल

सूखे जैसी स्थिति के उचित समाधान को परखने के लिए बनी सूखा पूर्व प्रारंभिक चेतावनी प्रणाली (डीईडब्ल्यूएस) के अनुसार भारत का करीब 42 फीसदी हिस्सा असामान्य रूप से सूखे की चपेट में है, जो कि पिछले वर्ष से करीब छह फीसदी ज्यादा है, लेकिन हैरानी की बात है कि मानव अस्तित्व और अच्छे स्वास्थ्य के लिए बेहद जरूरी पानी हमारे लिए अभी तक मुख्य मुद्दा नहीं बन सका है।

अब भारत का एक राज्य मध्य प्रदेश यह सुनिश्चित करने के लिए पानी के अधिकार संबंधी कानून को लाने पर विचार कर रहा है, ताकि राज्य के सभी निवासियों को पर्याप्त पानी की आपूर्ति हो सके। मध्य प्रदेश सरकार ने पुष्टि की कि वह अपने नागरिकों की स्वास्थ्य देख-भाल के साथ पर्याप्त पानी के विधायी आश्वासन पर विचार कर रही है। अगर ऐसा हो जाता है, तो मध्य भारत का यह राज्य जल-सुरक्षा पर इस तरह का सक्रिय कदम उठाने वाला देश का पहला राज्य बन जाएगा।

इस अधिनियम के विवरण पर अभी काम चल रहा है, लेकिन प्रस्तावित अधिनियम के तहत, सभी घरों में पानी के नल कनेक्शन और पर्याप्त पानी या अन्य सभी आवश्यकताओं को सुनिश्चित करना इसमें प्रस्तावित है। मध्य प्रदेश में 'पानी का अधिकार कानून' लागू करने की योजना ऐसे समय में आई है, जब केंद्र सरकार भी हर घर में पीने का पानी उपलब्ध कराने के लिए 'नल से जल' की बात कर रही है।

जलशक्ति नामक नए मंत्रालय की यह एक महत्त्वाकांक्षी योजना है कि सन् 2024 तक देश के सभी घरों में पाइप से पानी उपलब्ध कराया जाए, लेकिन क्या वास्तव में भारत के सभी लोग अस्तित्व एवं बेहतर स्वास्थ्य के लिए जरूरी सुरक्षित एवं पर्याप्त पेयजल हासिल कर पाएँगे या इसका भी वही हश्र होगा, जो अन्य बड़ी योजनाओं के साथ हुआ है?

प्रश्न उठता है कि जल-सुरक्षा कानून वास्तव में उन लाखों भारतीयों के अनिश्चित जीवन की समस्याओं का समाधान करेगा या नहीं, जिनकी पीने योग्य पानी तक पर्याप्त पहुँच नहीं है। संयुक्त राष्ट्र ने 28 जुलाई, 2010 को स्वच्छ जल और स्वच्छता को मानवाधिकार की मान्यता दी और इसे अन्य मानवाधिकारों की प्राप्ति के लिए आवश्यक बताया, लेकिन दुर्भाग्यवश 7.6 करोड़ भारतीय नागरिकों की अब भी सुरक्षित पेयजल तक पहुँच नहीं है।

नागरिक समाज के सदस्य, बेहद प्रतिष्ठित सामाजिक कार्यकर्त्ता, सुप्रसिद्ध 'जल पुरुष' राजेंद्र सिंह कहते हैं कि देश भर के नागरिकों तक पानी की पहुँच सुनिश्चित करने के लिए एक विधायी हस्तक्षेप की आवश्यकता है। सन् 2017 में नागरिक समाज समूह-जन जल जोड़ो अभियान (जेजेएन) ने एक संवाददाता सम्मेलन में जल-सुरक्षा विधेयक का एक मसौदा जारी किया था।

उस समय राजेंद्र सिंह ने कहा था कि उनका मानना है कि यदि सरकार द्वारा इस विधेयक को स्वीकार किया जाता है, तो यह विधेयक भूजल उपलब्धता, नदी प्रदूषण के खिलाफ प्रभावी संरक्षण और आबादी के लिए स्वच्छ पेयजल की गारंटी देने में मदद करेगा। जेजेएन एक राष्ट्रव्यापी अभियान है, जो जल साक्षरता अभियान के जरिए समाज को प्रेरित करके सामुदायिक भागीदारी के माध्यम से जल-सुरक्षा, तालाब, नदियों, झीलों के संरक्षण को सुनिश्चित करता है। इसकी शुरुआत सन् 2013 में की गई और नागरिक समाज के जल-सुरक्षा विधेयक के प्रस्ताव का पहला मसौदा सन् 2014 में प्रकाशित हुआ था।

राजेंद्र सिंह ने तर्क दिया कि 'पानी का अधिकार' भोजन के अधिकार की तरह महत्त्वपूर्ण और जरूरी है, और इसे मौलिक अधिकार के रूप में बढ़ावा देना आवश्यक है। उन्होंने कहा कि नदी के जलग्रहण का संरक्षण, नदी पर प्रदूषण भार को कम करना और एक्वीफर (पारगम्य चट्टान, जिससे भूजल का संचरण होता है) रिचार्ज और डिस्चार्ज के बीच संतुलन—इस अधिनियम की प्रमुख विशेषताएँ हैं, जिन पर प्रस्तावित जल-सुरक्षा विधेयक आधारित है।

प्रस्तावित विधेयक किसी क्षेत्र में अभिलेखों को बनाए रखने में स्थानीय अधिकारियों की भूमिका पर केंद्रित था। इसमें कहा गया है कि सभी स्थानीय अधिकारियों को अधिनियम पारित होने के चार महीने के भीतर अपने अधिकार क्षेत्र के जल निकायों के नक्शे प्रकाशित करने चाहिए और उनके रिकॉर्ड भी सुरक्षित रखने चाहिए।

इस विधेयक में भूजल निकासी और पुनर्भरण के लिए दिशानिर्देश देने के साथ-साथ जलस्रोतों और जल निकायों के उपयोग को प्रतिबंधित करने की भी बात की गई है। मसौदा विधेयक जल निकायों को संकट में डालने वाली सभी निषिद्ध गतिविधियों को संज्ञेय अपराध बनाने की दृष्टि से भी प्रभावी है, जिसमें प्रासंगिक भारतीय दंड संहिता के तहत अधिकतम सजा का प्रावधान किया गया है। इसमें कहा गया है कि अपने दायित्वों का निर्वहन करने में स्थानीय अधिकारियों की विफलता को भी अपराध माना जाएगा।

ये सभी सुझाव वास्तव में बहुत अच्छे हैं, लेकिन इनमें संतुलन बैठाना मुश्किल है। भारत के पास योजनाओं, प्रस्तावों और नीतियों की कभी कोई कमी नहीं रही है, लेकिन ये नीतियाँ कार्यान्वयन के मोर्चे पर विफल हो जाती हैं। ऐसा कुछ हद तक निहित स्वार्थ के कारण और कुछ हद तक अतिशय उदासीनता के कारण होता है।

अब देखना होगा कि मध्य प्रदेश कैसे लोगों को पानी का अधिकार मुहैया कराता है। यदि यह वास्तव में पानी के अधिकार का कानून लाता है, जो सबके लिए पानी की सुरक्षा सुनिश्चित करता है तो दूसरे राज्यों पर इसके लिए दबाव बनेगा। इसलिए इस राष्ट्रव्यापी संकट का समाधान तभी संभव है, जब इसके लिए सामूहिक दृष्टि से गंभीर प्रयत्न किए जाएँ। इस आसन्न संकट का यही एकमात्र समाधान है। ❑

अमेरिका की सेना में एक सैन्य अधिकारी था, जिसका नाम जॉन कैलेंडर था। उसे अनियमितता के कारण सेना से निकाल दिया गया। सेना से निकाले जाने पर जॉन ने अपने व्यक्तित्व का पुनर्मूल्यांकन किया और जो दोष उसे अपने अंतरंग में दृष्टिगोचर हुए, उसने उनका परिमार्जन करने का पूर्ण प्रयास किया और फिर एक साधारण सिपाही के रूप में सेना में भरती हो गया।

इस बार लड़ाई छिड़ने पर न केवल उसने अपूर्व शौर्य का प्रदर्शन किया, वरन अप्रतिम वीरता के लिए उसे अमेरिका के तत्कालीन राष्ट्रपति जॉर्ज वाशिंगटन द्वारा विशेष पुरस्कार भी प्रदान किया गया। इसके अतिरिक्त उसे उसका पूर्व पद भी पुनः प्रदान कर दिया गया। भूल होना मानवीय दोषों के कारण संभव है, परंतु जीवन में सफलता वे ही प्राप्त कर पाते हैं, जो उन दोषों का परिमार्जन एवं परिष्कार कर श्रेष्ठता के पथ का चयन करते हैं।

सजल संवेदना से आतंकवाद का अंत

वैश्विक संकट जब विचारों में उतरता है तो आतंकवाद का जन्म होता है। आतंकवाद की घटना निश्चित रूप से उस सबसे जुड़ी है, जो समाज में घटित हो रहा है। समाज बिखर रहा है। उसकी पुरानी व्यवस्था, अनुशासन, नैतिकता, धर्म सब कुछ गलत बुनियाद पर खड़े मालूम होते हैं। लोगों की अंतरात्मा पर अब उसकी कोई पकड़ नहीं रही।

आतंकवाद का मतलब इतना ही है कि लोग ऐसा मानने लगे हैं कि मनुष्य को नष्ट करने से कोई फरक नहीं पड़ता; क्योंकि उनके अनुसार उसमें ऐसा कुछ भी नहीं है, जो अविनाशी है। एक बार मनुष्य को केवल पदार्थ का संयोजन माना गया और उसके भीतर के आध्यात्मिक तत्त्व को कोई स्थान नहीं दिया गया तो मारना एक खेल बन जाता है।

इस धरती पर आणविक अस्त्रों का अंबार लगा हुआ है और आणविक अस्त्रों की वजह से आज कई राष्ट्र आतंकित हो गए हैं। आणविक अस्त्रों की ताकत इतनी है कि कुछ ही क्षणों में पूरी धरती को नष्ट किया जा सकता है। यदि पूरा विश्व एक साथ कुछ मिनटों में नष्ट किया जा सकता है तो विकल्प यह है कि पूरा विश्व एक हो जाए।

अब वह बँटा हुआ नहीं रह सकता। उसका अलग रहना समस्याजनक होगा; क्योंकि देश अलग रहे तो किसी भी क्षण युद्ध हो सकता है। अब देशों की सीमाएँ बरदाश्त नहीं की जा सकतीं। सब कुछ स्वाहा करने के लिए सिर्फ एक युद्ध काफी है और यह समझने के लिए मनुष्य के पास बहुत वक्त नहीं है कि हम ऐसा संसार बनाएँ, जहाँ युद्ध की संभावना ही न रहे।

आतंकवाद की बहुत-सी अंतरधाराएँ हैं। एक तो आणविक अस्त्रों का निर्माण करने की उन्मादी दौड़ में सभी राष्ट्र अपनी-अपनी शक्ति उस दिशा में उँडेल रहे हैं। पुराने अस्त्र अप्रासंगिक होते जा रहे हैं। वे राष्ट्रीय स्तर पर अप्रासंगिक तो हुए हैं, लेकिन निजी तौर पर व्यक्ति उनका इस्तेमाल कर सकते हैं और हम एक अकेले व्यक्ति के खिलाफ तो आणविक अस्त्रों का उपयोग नहीं कर सकते?

अगर एक अकेला आतंकवादी बम फेंकता है तो क्या हम उस पर एक मिसाइल बरसाएँगे? आणविक अस्त्रों ने व्यक्तियों को पुराने अस्त्रों का उपयोग करने की स्वतंत्रता दी है। यह स्वतंत्रता अतीत में संभव नहीं थी; क्योंकि सरकारें भी उन्हीं शस्त्रों का प्रयोग कर रही थीं। आतंकवाद के लिए ऐसे समृद्ध और उन्मादी देश जिम्मेदार हैं। अब सरकारें पुराने अस्त्रों को नष्ट करने में लगी हैं, उन्हें समुद्र में फेंक रही हैं, गरीब देशों को बेच रही हैं, जो नए अस्त्र नहीं खरीद सकते और सभी आतंकवादी उन गरीब देशों से आ रहे हैं, जो नए अस्त्र खरीदने की हैसियत नहीं रखते।

आतंकवाद विकराल रूप धारण करने वाला है और उसका कारण अति विचित्र है। वह यह कि अब तीसरा विश्व युद्ध नहीं होगा और ऐसा मानने के अलावा कोई विकल्प नहीं है। आतंकवाद का मतलब है कि अब तक जो सामाजिक रूप से किया जा रहा था, अब व्यक्तिगत स्तर पर होगा। यह और बढ़ेगा।

यह तभी बदलेगा, जब हम आदमी की समझ को जड़ से बदलेंगे जो कि हिमालय लाँघने जैसा दुरूह है; क्योंकि वे ही लोग जिन्हें हम बदलना चाहेंगे, हमसे लड़ेंगे—वे आसानी से बदलना नहीं चाहेंगे। यहाँ यह कहने का अर्थ मात्र इतना ही है कि आतंकवाद जैसी समस्याओं का समुचित समाधान तभी संभव है, जब मनुष्य की सोच को सकारात्मक दिशा दी जा सके। जब तक इनसान के भीतर छिपा हुआ आक्रोश बाहर अभिव्यक्त होने के लिए स्वतंत्र है—तब तक ऐसी भयावह समस्याओं का समाधान संभव नहीं है।

यदि हम आतंकवाद जैसी समस्याओं की जड़ों में जाकर उनके होने के पीछे के कारणों की समीक्षा करें तो हम पाएँगे कि यह बहुत हद तक वैचारिक शून्यता एवं भावनाओं के दूषित होने से उपजी समस्या है। कोई इनसान यदि दूसरे इनसान को मार डालने की हद तक उतरना चाहे और ऐसे कुकृत्य को करने में अपने को भाग्यशाली समझे तो निश्चित रूप से इसके पीछे का एक बहुत बड़ा कारण

उसका वैचारिक रूप से गुमराह होना और संवेदना की दृष्टि से शून्य होना है।

यही कारण है कि आज जब विश्व एक ऐसे बाजार में बदल गया है, जहाँ पर अपनी आर्थिक महत्त्वाकांक्षाओं की प्रतिपूर्ति करने की चाह में कोई भी देश व्यापक युद्ध नहीं चाहता तो वहीं आतंकवाद जैसे दानव को अनेक देश पोषित करते नजर आते हैं।

इन समस्याओं के कारण तो अनंत हैं, परंतु समाधान की दृष्टि से आध्यात्मिक मार्गदर्शन ही एक प्रभावी माध्यम नजर आता है। जब तक हर व्यक्ति के दृष्टिकोण को सर्वांगीण रूप से रूपांतरित न किया जा सके एवं उसके चिंतन व भावनाओं को एक बेहतर दिशा न दिखाई जा सके, तब तक आतंकवादरूपी इस समस्या का उचित समाधान संभव नहीं है।

आज आवश्यकता है कि हम मनुष्य के विचारों को बदल सकें और उसके अंदर संवेदना को संवेदित कर सकें तो निश्चित रूप से आतंकवाद को कम किया जा सकता है। सजल संवेदना प्रस्तर के समान हृदय को द्रवित कर सकती है। यही वह अमोघ अस्त्र है, जिससे आतंकवाद को समाप्त किया जा सकता है। ❑

चारूदत्त एक सज्जन व्यक्ति था, जिसकी ईमानदारी एवं सत्यता पर हरेक को विश्वास था। उसकी प्रामाणिकता की कथाएँ पूरे नगर में विख्यात थीं। एक बार इसी विश्वास के आधार पर कोई अपने बहुमूल्य रत्न उसके पास धरोहर के रूप में रखवा गया। दुर्भाग्यवश चारूदत्त के घर चोरी हो गई और वे रत्न चोरी चले गए। चोर बहुत- सा सामान चारूदत्त का भी ले गए थे, पर उनके जाने से ज्यादा दुःख चारूदत्त को उन रत्नों के चोरी होने का था।

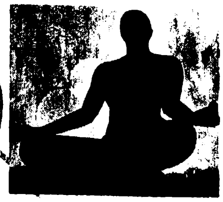
उसने अपना दुःख अपने मित्र से साझा किया तो उसके मित्र ने उससे पूछा—"जब वह व्यक्ति जो रत्नों का मालिक था, अपने रत्न तुम्हारे पास रखकर गया तो उसका साक्षी कौन था ?" चारूदत्त ने उत्तर दिया—"साक्षी तो कोई नहीं था, वह तो मात्र विश्वास के आधार पर ही मेरे यहाँ रत्न रख गया था।" चारूदत्त के मित्र ने कहा—"तो फिर इतना परेशान होने की क्या बात है ? जब वह पूछने आए तो मुकर जाना। कह देना कि तुमने मेरे पास कोई रत्न नहीं रखे थे।" यह सुनकर चारूदत्त ने उत्तर दिया—

भैक्ष्येणाप्यर्जयिष्यामि पुनर्न्यस्ति प्रतिक्रियाम्।
अनृतं नाभिधास्यामि चारित्रभ्रंशकारणम्॥

अर्थात—चाहे मुझे भीख माँगनी पड़े, पर मैं धरोहर के रत्नों के बराबर धन उत्पन्न कर उसे लौटा दूँगा, पर किसी भी स्थिति में चरित्र को कलंकित करने वाले असत्य का प्रयोग नहीं करूँगा, झूठ नहीं बोलूँगा।

जब चारूदत्त के इस वार्त्तालाप का पता उस व्यक्ति को चला, जिसने अपने रत्न चारूदत्त के पास धरोहर छोड़े थे तो वह चारूदत्त की ईमानदारी से बहुत प्रभावित हुआ। व्यक्ति की प्रामाणिकता ऐसे विषम समय में ही सिद्ध होती है।

सौंप दिया इस जीवन को हे प्रभु! तुम्हारे हाथों में



साधक जब ज्ञान, कर्म, भक्ति, ध्यान, सेवा, स्वाध्याय आदि साधनाएँ पूर्ण श्रद्धा, विश्वास, साहस, संयम, उत्साह के साथ नित्य निरंतर, अविराम, अविचल, अनवरत करता जाता है, तब अंततः उसके चित्त के मल, चित्त के संस्कार धुलते जाते हैं, चित्त निर्मल होने लगता है, चित्त की एकाग्रता बढ़ती जाती है।

ब्रह्म का चिंतन, ध्यान करते-करते स्वयं चित्त भी ब्रह्मभाव में विलीन होने लगता है। ध्याता, ध्यान और ध्येय— ये तीनों मिलकर एक हो जाते हैं। तब साधक उसी भाव दशा में वास करने लगता है। उसकी दृष्टि समस्त वस्तुओं में आत्मा को और आत्मा में समस्त वस्तुओं को देखने लगती है। उसे पल-पल यह अनुभूति होती रहती है कि यह जगत् कुछ और नहीं, बल्कि ब्रह्म की ही अभिव्यक्ति, क्रीड़ा या लीला है।

उसे यह प्रत्यक्ष अनुभूति होने लगती है कि परात्पर परब्रह्म ने ही अपनी सत्ता से इस जगत् को रचा है और इसमें वह अंतर्यामी, सर्वव्यापी होकर बसा हुआ है। वह परमात्मा अपनी प्रभुता से इस जगत् में अपनी शाश्वत, सौंदर्यमयी, दिव्य लीला को खेलता है। ईश्वर के अंश होने के कारण हम ईश्वर की इस दिव्य लीला की ओर सहज ही आकर्षित होते हैं और अपने अंतरतम में उस सत्-चित्-आनंदरूपी परमात्मा की अनुभूति पाते हैं।

उस स्थिति में परमात्मा के इस अलौकिक दिव्य स्वरूप में हम डूबते जाते हैं। परमात्मा का हममें और हमारा परमात्मा में वास होने लगता है। फलस्वरूप हमारा शरीर, मन, बुद्धि, समस्त इंद्रियाँ आदि दिव्यता को प्राप्त होने लगते हैं। हमारा शरीर, मन, बुद्धि, इंद्रियाँ सभी भगवन्मय होते जाते हैं, ईश्वरमय होते जाते हैं। हमारी प्रेरणाएँ, विचारणाएँ, भावनाएँ सभी भगवन्मय होने लगती हैं।

तब हम स्वयं कुछ भी नहीं करते। हम तो उस परम प्रभु के हाथों का एक खिलौना मात्र होते हैं। हम वही खेल खेलते हैं, जो प्रभु हमसे खेलना चाहते हैं। हम वही कर्म करते हैं, जो प्रभु हमसे कराना चाहते हैं। हम अपनी आँखों से वही देखते हैं, जो प्रभु देखना या दिखलाना चाहते हैं। हमारी प्रेरणाएँ, विचारणाएँ, भावनाएँ सभी भगवान की हो जाती हैं। तब हमारे हाथों से भगवान ही कुछ करते और कराते हैं। हमारी आँखों से भगवान ही देखते और दिखाते हैं। हम तो परमात्मा के हाथों कठपुतली की भाँति नाचते भर रहते हैं।

तब अपनी इच्छाएँ, कामनाएँ, वासनाएँ कुछ भी तो अपने पास नहीं रह जातीं; क्योंकि हम भगवान के जो हो जाते हैं। हम उस पतंग की तरह हो जाते हैं, जिसकी डोर अब परमात्मा के हाथों में है। वही उस 'पतंग' को ऊँचे, नीले गगन में अपने हाथों से उड़ाता है। हम उस उड़ान की अनुभूति करते हैं और आनंदित होते हैं। परमात्मा बाँसुरी को अपने अधरों पर रख स्वयं उसमें अपने स्वर भर रहे होते हैं, संगीत भर रहे होते हैं और हम उस स्वर-संगीत में डूबकर आह्लादित, आनंदित हुए जाते हैं।

हम तो सागर की लहरों के बीच बहते उस नाव सरीखे होते हैं, जिसकी पतवार अब हमारे हाथों में नहीं, करतार के हाथों में होती है। हमारे चित्त का अब अपना कोई रंग नहीं रह जाता, प्रभु का रंग ही चित्त का रंग हो जाता है। ऐसा लगता है कि अब अपनी कोई कल्पना भी नहीं रही। अब अपनी कोई इच्छा भी नहीं रही। परमात्मा की कल्पना ही अब अपनी कल्पना हो गई। परमात्मा की इच्छा ही अब अपनी इच्छा हो गई।

तब ऐसा अनुभव होता है कि अपना चित्त तो अब वह सादा कोरा कागज हो गया जिस पर अपना लिखा कुछ भी नहीं। परमात्मा जो भी चाहे उस पर लिख सकता है, मिटा सकता है और फिर कुछ नई चीजें लिख सकता है। अब तो साधक को यह भी अनुभूति होने लगती है कि जड़ प्रकृति भी कोई जड़ रचना नहीं है। यह भी सचेतन सत्ता की एक अवस्था ही है और इसके सिवा कुछ भी नहीं।

जब हम इस प्रकार स्थायी रूप से ब्रह्मभाव में वास करने लगते हैं, स्वयं को उनके हवाले कर देते हैं, स्वयं को पूर्णतः परमात्मा को समर्पित कर देते हैं, तब यह अनुभव

होता है कि इस जगत् में अव्यक्त, अनंतगुण ब्रह्म ही सच्चिदानंद रूप से अपनी लीला कर रहे हैं।

धीरे-धीरे हमारी यह अनुभूति गहरी और स्थायी होती जाती है और हम इस अनुभूति में स्थायी रूप से वास करने लगते हैं। जब हम इस दिव्य भगवन्मयी अनुभूति में स्थायी रूप से वास करने लगते हैं, तब हमारे हर कर्म निष्पाप और निष्काम होने लगते हैं। तब परमात्मा हमारे शोक, पाप, भय, भ्रम, आंतरिक संघर्ष और दुःख की समस्त कल्पनाओं, संभावनाओं को हमारी सत्ता से बलपूर्वक स्थायी रूप से बाहर निकाल फेंकते हैं।

सचमुच जो कोई भी ब्रह्म के इस परम आनंद को प्राप्त कर लेता है, उसको संसार की किसी भी चीज से भय नहीं रहता। किसी वस्तु से उसे कोई मोह नहीं रह जाता। उसे सृष्टि के कण-कण में शुभ, शिव, मंगल और आनंद ही दिखते हैं। वह सभी जीवों के साथ एकात्म की अनुभूति करता है और यह सृष्टि उसे सौंदर्य, प्रेम, प्रकाश और आनंद का लहराता हुआ सागर दिखाई पड़ती है।

उस सागर में वह हर पल डूबता-उतराता रहता है। इतना ही नहीं श्रीअरविंद के शब्दों में कहें तो इस अनुभूति में स्थिर होकर हम इस योग्य हो जाते हैं कि हम इसे संस्पर्श, एकता और प्रेम के द्वारा दूसरों तक पहुँचा सकें और फलस्वरूप इस ब्राह्मी स्थिति को उस समय अपने इस जगत् में चारों ओर फैलाने के हम केंद्र बन जाते हैं।

सचमुच ऐसा जीवन ही दिव्य जीवन है। ऐसा जीवन ही भगवन्मय जीवन है। ऐसा जीवन ही सौंदर्य, सुख, शांति, समृद्धि, सामर्थ्य और आनंद से भरा हुआ जीवन है। ऐसा जीवन जीना ही साधना का और साधक का लक्ष्य होना चाहिए। बस, आवश्यकता है स्वयं को सच्चे मन से अपने आराध्य, अपने प्रभु के हाथों में सौंप देने की। प्रस्तुत गीत में साधक के कुछ ऐसे ही मनोभाव अभिव्यक्त हो रहे हैं।

अब सौंप दिया इस जीवन का,
सब भार तुम्हारे हाथों में।
है जीत तुम्हारे हाथों में,
और हार तुम्हारे हाथों में॥
मेरा निश्चय है बस एक यही,
एक बार तुम्हें पा जाऊँ मैं।
अर्पण कर दूँ दुनिया भर का,
सब प्यार तुम्हारे हाथों में॥
जो जग में रहूँ तो ऐसे रहूँ,
जैसे जल में कमल का फूल रहे।
मेरे सब गुण-दोष समर्पित हों,
करतार तुम्हारे हाथों में॥
यदि मानव का मुझे जनम मिले,
तो तेरे चरणों का मैं पुजारी बनूँ,
इस पूजा की एक-एक रग का,
हो तार तुम्हारे हाथों में॥
जब-जब संसार का कैदी बनूँ,
निष्काम भाव से करम करूँ।
फिर अंत समय में प्राण तजूँ,
निराकार करतार तुम्हारे हाथों में॥
मुझमें-तुझमें बस भेद यही,
मैं नर हूँ तुम नारायण हो।
मैं हूँ संसार के हाथों में,
संसार तुम्हारे हाथों में॥
अब सौंप दिया इस जीवन का,
सब भार तुम्हारे हाथों में।
है जीत तुम्हारे हाथों में,
और हार तुम्हारे हाथों में॥
अब हार-जीत कुछ अपनी नहीं,
अब हार-जीत भी तेरी है।
अब सौंप दिया इस जीवन का,
सब भार तुम्हारे हाथों में॥
अब मैं तो मात्र खिलौना हूँ,
करतार तुम्हारे हाथों में।
अब खेल नहीं कोई अपना है,
मैं तो मात्र खिलौना हूँ।
अब सौंप दिया इस जीवन का,
सब भार तुम्हारे हाथों में॥
अब अपनी है कुछ चाह नहीं,
करतार की चाह ही अपनी है।
अब सौंप दिया इस जीवन का,
सब भार तुम्हारे हाथों में॥
अपना जीवन तो नैया है,
प्रभु ही मात्र खेवैया है।
सागर में बहती नाव हैं हम,
पतवार नहीं निज हाथों में॥
अब सौंप दिया इस जीवन का,
सब भार तुम्हारे हाथों में। ❑

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

भाषा का समुचित विकास

क ख ग घ ABCDE સ ચા ટ

भाषा की समृद्धि उसके विचार और ऊर्जा से होती है। किसी भी भाषा के मूल्यांकन की बड़ी कसौटी उसके प्रयोक्ता की संख्या को मानना अनुचित है। भाषा की ताकत की कसौटी उसमें उपलब्ध समृद्ध साहित्य, सशक्त संप्रेषण क्षमता, ज्ञान-विज्ञान, तकनीक में अभिव्यक्ति क्षमता, उसकी ग्रहणशीलता तथा उसमें रोजगार की संभावनाएँ आदि होती हैं।

दुनिया में ऐसी कई भाषाएँ हैं, जिनके प्रयोक्ताओं की संख्या कम है, परंतु उपर्युक्त तत्त्वों से सराबोर होने के कारण उनकी क्षमता की गूँज पूरे विश्व में सुनाई देती है। फ्रेंच भाषा के प्रयोक्ताओं की संख्या भारतीय संघ की राजभाषा हिंदी के प्रयोक्ताओं की संख्या से कम है, परंतु फ्रेंच भाषा और साहित्य के प्रति लोगों के आकर्षण को आसानी से महसूस किया जा सकता है।

जर्मन, जापानी, इटैलियन, पुर्तगाली आदि कई भाषाओं के प्रयोक्ताओं की संख्या भारतीय संघ की राजभाषा हिंदी सहित कई भारतीय भाषाओं के प्रयोक्ताओं की संख्या से काफी कम है ? परंतु उत्तर-पूर्व भारतीय विद्यार्थी संघ की राजभाषा हिंदी, देश की सभ्यता-संस्कृति का प्रतिनिधित्व करती है। वे हिंदी को सीखने के बजाय उपरोक्त विदेशी भाषाओं को सीखना अधिक पसंद करते हैं।

देश एवं राज्य की राजभाषा में शामिल हिंदी सहित अन्य भाषाओं की भयावह स्थिति का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि अपने ही देश के कथित अँगरेजी माध्यम विद्यालयों में विद्यार्थियों के द्वारा हिंदी कक्षा के अलावा अन्य कक्षाओं में तथा सार्वजनिक रूप से हिंदी भाषा में बातचीत करने पर उन पर आर्थिक जुरमाना लगाया जाता है।

हिंदी सहित अन्य भारतीय भाषाओं में रोजगार के कम होते अवसर, ज्ञान-विज्ञान, तकनीक के क्षेत्र में इन भाषाओं में मौलिकता से अधिक अंधानुकरण करते रहने की प्रवृत्ति ही इनके पिछड़ते जाने का मुख्य कारण है।

स्वाधीनता आंदोलन के दौरान राष्ट्रीय स्तर पर उभरी हिंदी भाषा तथा राज्यस्तर की अन्य राजभाषाएँ इतने कमजोर हालात में क्यों हैं, यह आज चिंता का विषय है। जबकि संविधान के अनुच्छेद 351 के अनुसार संघ का कर्त्तव्य है कि वह हिंदी भाषा के विकास एवं प्रचार हेतु समुचित प्रयत्न करेगा, जिससे वह संपूर्ण देश में प्रयुक्त हो सके और भारत की मिली-जुली संस्कृति को अभिव्यक्त कर सके।

इसके लिए संविधान में इस बात का भी निर्देश किया गया है कि हिंदी में अन्य भारतीय भाषाओं के शब्दों को समाहित कर उसके शब्द-भंडार को समृद्ध किया जाए। इसके लिए राजभाषा आयोग का गठन किया गया, परंतु राजभाषा हिंदी का विकास भारत की मिली-जुली संस्कृति को अभिव्यक्त करने के स्थान पर खास समुदाय और उनके निहित स्वार्थों को ध्यान में रखते हुए किया गया। इसमें अन्य भारतीय भाषाओं के शब्दों को तरजीह न के बराबर दी गई।

राजभाषा हिंदी भारत के आम नागरिकों के लिए अँगरेजी भाषा विज्ञान, तकनीक, आर्थिकी, बैंकिंग, कानून-व्यवस्था आदि क्षेत्रों की हिंदी शब्दावली विद्यार्थियों के लिए अबूझ प्रतीत होती है। इनके शब्दकोश निर्माण में मौलिकता के बजाय अँगरेजी से हिंदी अनुवाद पर अधिक जोर दिया जाता रहा है।

फलतः भारतीय संघ की राजभाषा सरकार के तमाम प्रयासों के बावजूद आजादी के लगभग सत्तर वर्षों के बाद भी प्रशासनिक, ज्ञान-विज्ञान, आर्थिकी, बैंकिंग, न्याय आदि क्षेत्रों में अपेक्षानुसार प्रचलित नहीं हो पाई और निकट भविष्य में भी इसके लिए संघीय राजभाषा की यथार्थ गरिमा को पूर्णरूपेण प्राप्त करना दूभर प्रतीत हो रहा है।

राजभाषा हिंदी का विकास बौद्धिक वर्गों, खास समुदाय के निहित स्वार्थों को ध्यान में रखकर करने के बजाय संविधान के निर्देशानुसार भारत की विविध संस्कृतियाँ, उसको अभिव्यक्त करने वाली विविध भाषाएँ और उन विविध भाषाओं को प्रयोग करने वाली साधारण जनता को ध्यान में रखकर किया जाए।

वर्तमान में यह भाषाई राजनीति हिंदी को लेकर नहीं, बल्कि हिंदी भाषाई क्षेत्रों में बोली जाने वाली अन्य भारतीय

भाषाओं को खड़ा करके की जा रही है। माहौल बनाया जा रहा है कि हिंदी भाषाई क्षेत्रों की अन्य भाषाओं का संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल होना राजभाषा हिंदी के लिए नुकसानदेह है।

इससे राजभाषा हिंदी को राष्ट्रीय स्तर पर नुकसान होगा। यह वर्चस्ववादी राजनीति अभी राजभाषा हिंदी के बिना हिंदी क्षेत्रों की अन्य भाषाओं के संगत में हो रही है। इसी ढंग से यह राजनीति राजभाषा हिंदी के अलावा अन्य भारतीय भाषाओं के संगत में रखकर करने की संभावना है कि अन्य भारतीय भाषाओं की समृद्धि, सरकार के द्वारा उसके विकास पर खरच की जाने वाली राशि तथा उन भाषाई लोगों का अपनी भाषा के प्रति प्रेम राष्ट्रीय हिंदी की अंतरराष्ट्रीय छवि को धूमिल कर रहे हैं। यहाँ यह समझने योग्य बात है कि दरअसल भारतीय भाषाओं के विकास में संघीय राजभाषा का विकास सन्निहित है और संघीय राजभाषा हिंदी के विकास में भारतीय भाषाओं का विकास निहित है।

भारतीय भाषाएँ और राजभाषा हिंदी एकदूसरे पर आधारित हैं। एक के कमजोर होने पर दूसरी कमजोर होगी। परिणामस्वरूप अन्य भाषाएँ मजबूत होंगी और उनका वर्चस्व कायम होगा, जो आज राष्ट्रीय फलक पर हो रहा है।

इन्हीं बिंदुओं के मद्देनजर संविधान के भाषा संबंधी प्रावधान में अनुच्छेद 343 से 351 के अलावा आठवीं अनुसूची का प्रावधान किया गया। दरअसल आठवीं अनुसूची का आधार अनुच्छेद 344 है। अनुच्छेद 344 के अनुसार राष्ट्रपति संविधान के प्रारंभ से पाँच वर्षों के बाद और फिर प्रारंभ से दस वर्षों के पश्चात एक राजभाषा आयोग का गठन करेंगे।

इसका मुख्य उद्देश्य है कि यह राजभाषा हिंदी के अधिकाधिक प्रयोग तथा अँगरेजी के प्रयोग पर रोक लगाने की सिफारिश करें। जाहिर है कि आठवीं अनुसूची में जनभावनाओं की माँगों के अनुरूप भाषाओं को शामिल करना, उस भाषा विशेष के विकास हेतु कदम उठाना है, ताकि वह भाषा विशेष समृद्ध हो सके और उसके प्रयोक्ताओं की अँगरेजी पर निर्भरता धीरे-धीरे समाप्त हो सके। कुछ विद्वानों के द्वारा यह भ्रम फैलाया जा रहा है कि आठवीं अनुसूची में शामिल होना भाषा की मान्यता प्राप्त होना है।

इसी के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा रहा है कि हिंदी भाषाई क्षेत्र की अन्य भाषाएँ आठवीं अनुसूची में शामिल होते ही भाषा की मान्यता प्राप्त कर लेंगी। इससे उस भाषा विशेष के प्रयोक्ताओं को हिंदी से अलग करके देखा जाएगा और राजभाषा हिंदी बोलने वालों की संख्या कम हो जाएगी। तत्पश्चात राजभाषा हिंदी कमजोर होती जाएगी।

मैथिल कोकिल विद्यापति, लोककवि तुलसीदास, बालहृदय के पारखी सूरदास, कवयित्री मीरा का साहित्य हिंदी पाठ्यपुस्तकों से हटा लिया जाएगा। इससे हिंदी साहित्य का भक्तिकालीन स्वर्णयुग इससे छिन जाएगा। ये निष्कर्ष आठवीं अनुसूची में शामिल होते ही भाषा की मान्यता प्राप्त कर लेने संबंधी भ्रम की उपज हैं।

फार्म—4

(1) प्रकाशन स्थान	**मथुरा**
(2) प्रकाशन अवधि	**मासिक**
(3) मुद्रक का नाम	**मृत्युंजय शर्मा**
क्या भारत का नागरिक है	**हाँ**
पता	**जनजागरण प्रेस, वृंदावन मार्ग, मथुरा**
(4) प्रकाशक का नाम	**मृत्युंजय शर्मा**
(5) संपादक का नाम	**डॉ० प्रणव पंड्या**
क्या भारत का नागरिक है	**हाँ**
पता	**शांतिकुंज, हरिद्वार**
(6) उन व्यक्तियों के नाम व पते, जो समाचारपत्र के स्वामी हों तथा जो समस्त पूँजी के एक प्रतिशत से अधिक के साझेदार या हिस्सेदार हों।	**मृत्युंजय शर्मा अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामंडी, मथुरा (उ. प्र.)**

मैं मृत्युंजय शर्मा एतद् द्वारा घोषित करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं। —*मृत्युंजय शर्मा*

आठवीं अनुसूची जनभावनाओं के आधार पर उनके द्वारा प्रयोग की जाने वाली भाषा के विकास की दिशा से संबद्ध प्रावधान है। आठवीं अनुसूची में शामिल हुए बगैर भी भारत में लगभग 1606 भाषा (भारत की कुल भाषाओं की संख्या लगभग 1628 है। जिसमें से आठवीं अनुसूची में शामिल 22 भाषाओं को घटा दिया गया है।)

भाषाओं की राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय स्वीकृति है और भाषा विज्ञान में विविध भाषा परिवारों के अंतर्गत इन्हें मान्यता मिली हुई है। यह निष्कर्ष भी आधारहीन है कि आठवीं अनुसूची में शामिल होते ही उस भाषा से संबद्ध साहित्य संघ की राजभाषा हिंदी की साहित्य की पाठ्यपुस्तकों से हटा लिया जाएगा। भारत जैसी विविध भाषाओं वाले देश में सभी भारतीय भाषाओं का विकास अनिवार्य आवश्यकता है। भाषिक वर्चस्ववाद के इस दौर में अधिकांश भारतीय नागरिक भाषा के स्तर पर प्रशासन, न्यायालय, ज्ञान-विज्ञान, तकनीक के क्षेत्र में कमजोर हैं। प्राथमिक कक्षाओं में मातृभाषा से इतर भाषाओं में पाठ्यपुस्तक तथा बच्चे की मातृभाषा से अनजान शिक्षक के कारण कई बच्चे बीच में ही पढ़ाई छोड़ने पर मजबूर हैं। वहीं उच्च शिक्षा में भाषा की समस्या के कारण कई विद्यार्थी पसंदीदा विषय का अध्ययन नहीं कर पाते हैं।

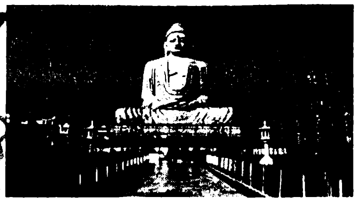
इस तरह भारतीय भाषाओं की मजबूती में ही संघ की राजभाषा हिंदी की शक्ति निहित है और राजभाषा हिंदी की मजबूती में भारतीय भाषाओं का विकास संभावित है। इस समझ और प्रयास के अभाव में भारतीय भाषाओं पर भारतीयेत्तर भाषा का वर्चस्व बढ़ता जाएगा। हमें अपनी भाषा के साथ अन्य भाषाओं का भी सम्मान करना चाहिए। ❑

स्वामी रामकृष्ण परमहंस का लोटा सदा उनके साथ रहता था और वे उसे नित्यप्रति अच्छे से रगड़-रगड़कर धोते थे। एक दिन उनके निकटवर्ती शिष्य ने उनसे पूछा—''ठाकुर! आपका लोटा तो वैसे ही इतना चमकता है तो फिर आप उसे इतना क्यों माँजते हैं? रोज-रोज इस पर इतनी मेहनत करने की आवश्यकता क्यों है?''

स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने उत्तर दिया—''बेटा! इसमें यह चमक एक दिन में थोड़े ही आ गई थी, इस पर रोज परिश्रम किया गया है तभी यह ऐसा हो पाया है। मनुष्य का मन भी ऐसा ही है—इसे रोज साफ करते रहो तो यह कुसंस्कारों से, कषाय-कल्मषों से दूर रहता है, परंतु जरा-सी अनदेखी करने पर कब यह गलत रास्ते पर मुड़ जाता है, उसका पता ही नहीं चलता।''

सत्य यही है कि मनुष्य को अपने मन को निरंतर सद्विचारों के जल से रगड़-रगड़कर साफ रखने की आवश्यकता है, तभी तो व्यक्तित्वरूपी लोटा अपनी चमक बरकरार रख पाता है।

भगवान बुद्ध की चेतना के प्रतीक पवित्र स्थल



बुद्ध मानवीय इतिहास की एक ऐसी दिव्य विभूति हैं, जिनका व्यक्तित्व सहज ही ध्यान-समाधि एवं सम्यक जीवन का पर्याय बनकर साधकों के जीवन को दिव्यता की ओर प्रेरित करता है। करुणा के अवतार बुद्ध स्वयं भगवान सदृश थे। स्वामी विवेकानंद अपनी प्रारंभिक अवस्था से ही उनसे बहुत प्रभावित रहे तथा उन्हें भगवान सदृश मानते थे। उन्हीं के शब्दों में, भगवान बुद्ध मेरे इष्टदेव थे, मेरे ईश्वर थे। उनका कोई ईश्वरवाद नहीं, वे स्वयं ईश्वर थे। इस पर मेरा पूर्ण विश्वास है।

आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व समाज की पतनोन्मुख परिस्थितियों के बीच भगवान बुद्ध का जन्म हुआ था। कर्मकांडप्रधान तत्कालीन धर्म का स्वरूप विकृत हो चुका था। समाज एक तरह की जड़ता, ठहराव एवं अराजक अवस्था की ओर उन्मुख था। इन विसंगतियों के परिमार्जन हेतु भगवान बुद्ध के रूप में क्रांति की एक लहर उठती है।

हालाँकि उस कहानी की शुरुआत राजकुमार सिद्धार्थ की दु:ख के निराकरण की आत्यांतिक खोज में भगवान बुद्ध बनने से होती है, लेकिन क्रमश: बौद्ध धर्म के रूप में सामाजिक परिवर्तन की एक ताजगी भरी बयार विश्व में व्याप्त होती है, जिसका प्रभाव आज तक देखा जा सकता है।

भगवान बुद्ध का जन्म राजकुमार सिद्धार्थ के रूप में राजपरिवार में हुआ था। उनके पिता थे कपिलवस्तु के महाराजा शुद्धोदन तथा माता मायादेवी। इनका जन्म लुंबिनी में हुआ था, जो वर्तमान में भारत से जुड़े नेपाल का दक्षिणी हिस्सा है।

भगवान बुद्ध का लालन-पालन पिता के राजनिवास कपिलवस्तु में हुआ। ज्योतिषियों ने पहले ही घोषणा कर रखी थी कि बालक भविष्य में या तो संन्यासी बनेगा या चक्रवर्ती सम्राट होगा। माता-पिता इनके संन्यासी बनने से आशंकित होकर, इनके सुखभोग की सारी व्यवस्था महल में करते हैं, लेकिन होनी को कौन टाल सकता है?

जीवन के एक पड़ाव पर इन्हें एक रोगी, वृद्ध और मृतक के दर्शन के साथ जीवन की निस्सारता व दु:खमय स्वरूप का तीव्र बोध होता है व इसे समझते हुए वे दु:ख से आत्यांतिक मुक्ति के पथ की खोज में संसार त्याग देते हैं और पत्नी यशोधरा तथा पुत्र राहुल सहित राजमहल को पीछे छोड़कर तप-त्याग एवं ध्यान-साधना प्रधान जीवन का वरण करते हैं।

उनकी साधनास्थली बनती है—श्रावस्ती, जो उत्तर प्रदेश में लखनऊ से लगभग 150 किमी० दूर स्थित है। साथ ही वर्षा ऋतु में यह उनकी लोकप्रिय एकांतस्थली भी थी। यहीं पर बुद्ध भगवान की परिपक्व होती साधना के परिणामस्वरूप पहला चमत्कार प्रदर्शित हुआ था।

छह वर्षों के कठोर तप एवं साधना के पश्चात भी जब बुद्ध को परम ज्ञान नहीं मिलता है, तो वे गया में पहुँचकर प्रण लेते हैं कि जब तक आत्मज्ञान उपलब्ध नहीं होता, वे पीपल के पेड़ के नीचे से उठेंगे नहीं, चाहे प्राण ही क्यों न निकल जाएँ। लगभग छह दिन-छह रात भूखे-प्यासे यहाँ तप करने के बाद उन्हें परम ज्ञान अर्थात बुद्धत्व उपलब्ध होता है और सिद्धार्थ गौतम आकाश जैसे अनंत ज्ञान के सागर हो जाते हैं। जिस पेड़ के नीचे इन्हें बुद्धत्व प्राप्त होता है, उसे बोधिवृक्ष की संज्ञा दी गई और गया का नाम बोधगया पड़ता है।

आज बोधिवृक्ष की आयु 2500 वर्ष से अधिक हो चुकी है, जिसकी एक शाखा को सम्राट अशोक द्वारा श्रीलंका में ले जाकर उगाया गया था। बोधगया भारत के बिहार प्रांत में स्थित है, जिसे भगवान बुद्ध की निर्वाणस्थली भी कहा जाता है। यह गया स्टेशन से 7 किमी० की दूरी पर है। मालूम हो कि यह स्थान हिंदुओं का पितृ तीर्थ भी है, जिसे गयासुर के नाम पर रखा गया था। सन् 2002 में यूनेस्को द्वारा इस शहर को विश्व विरासत स्थल घोषित किया गया है।

ज्ञानप्राप्ति के बाद भगवान बुद्ध ने अपना पहला उपदेश सारनाथ स्थान पर दिया, जो उत्तर प्रदेश में बनारस से 10 किमी की दूरी पर स्थित है। सारनाथ पर ही भगवान बुद्ध

अपना पहला शिष्य बनाते हैं और धर्म संघ की स्थापना के साथ धर्मचक्र-प्रवर्तन का शुभारंभ करते हैं। यहीं पर अशोक का चतुर्मुख सिंह स्तंभ, भगवान बुद्ध का प्राचीन मंदिर, धामेक स्तूप, चौखंडी स्तूप आदि दर्शनीय स्थल हैं। कभी बौद्ध धर्म के इस प्रधान केंद्र को मुहम्मद गौरी ने नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था।

बोधगया से 70 किमी0 दूर राजगीर भगवान बुद्ध की 12 वर्षों तक बरसात में एकांतवास की स्थली रही। यहाँ का विश्व शांति स्तूप देखने लायक है, जो गृद्धकूट पर्वत पर बना हुआ है। राजगीर में ही वैभारगिरि पहाड़ियों की प्रसिद्ध सप्तपर्णी गुफा है, जहाँ भगवान बुद्ध के निर्वाण के बाद प्रथम बौद्ध धर्म सभा का आयोजन किया गया था।

राजगीर में ही विश्वविख्यात नालंदा विश्वविद्यालय स्थित है। माना जाता है कि भगवान बुद्ध अपने जीवन काल में कई बार नालंदा आए थे। वैशाली नामक स्थान पर भगवान बुद्ध ने अपना अंतिम उपदेश दिया था, जो बिहार की राजधानी पटना से 60 किमी0 की दूरी पर है। कहा जाता है कि बुद्ध ने अपने शिष्य आनंद को अपने अवश्यंभावी देहत्याग का संकेत दे दिया था। वैशाली को 100 वर्ष बाद बौद्ध धर्म की दूसरी महासभा के लिए भी जाना जाता है।

अंतत: 80 वर्ष की आयु में भगवान बुद्ध कुशीनगर स्थान पर शरीर का त्याग कर महापरिनिर्वाण को प्राप्त होते हैं, जो गोरखपुर से लगभग 53 किमी0 पूर्व में स्थित है। कुशीनगर के समीप हिरण्यवती नदी के समीप भगवान बुद्ध ने अपनी आखिरी साँस ली थी। रंभर स्तूप के निकट उनका अंतिम संस्कार किया गया। अंतिम समय भगवान बुद्ध के पास इनके सबसे प्रिय शिष्य आनंद साथ में थे। माना जाता है कि एक 120 वर्षीय सुभद्र अंतिम भिक्षु थे, जिन्हें बुद्ध ने दीक्षित किया था।

तथागत के निर्वाण के बाद इनके शरीर के अवशेष को आठ भागों में विभाजित कर आठ स्थानों पर आठ स्तूप बनाए गए, जिनमें कुशीनगर, पावागढ़, राजगृह, बेटद्वीप, कपिलवस्तु तथा वैशाली आदि प्रसिद्ध हैं। कहा जाता है कि बाद में भगवान बुद्ध के अवशेषों को सम्राट अशोक द्वारा अस्सी हजार से अधिक स्तूपों में अपने साम्राज्य एवं इसके बाहर स्थापना के लिए वितरित किया गया था।

भगवान बुद्ध ने भारत के जिन स्थलों पर विहार किया, वहाँ बौद्ध तीर्थस्थल निर्मित होते गए। कश्मीर से होते हुए वे अफगानिस्तान तक गए। बौद्धकाल में अफगानिस्तान का बामियान क्षेत्र बौद्ध धर्म की राजधानी था। मध्य प्रदेश, बिहार, उत्तर प्रदेश और बंगाल प्रारंभिक काल में बौद्ध धर्म के गढ़ रहे। यहाँ हजारों स्तूप एवं विहार बनाए गए थे, लेकिन मध्यकाल में लगभग सभी को तोड़ दिया गया। अब इनमें से कुछ ही शेष बचे हैं।

इस तरह भगवान बुद्ध 80 वर्ष की आयु तक बौद्ध धर्म का प्रसार करते रहे। उनके शरीर त्याग के बाद बौद्ध धर्म का विश्वव्यापी प्रसार हुआ, जिसमें एशिया के अधिकांश देश प्रमुख हैं। महायान, थेरवाद, वज्रयान जैसे विभिन्न रूपों में आज यह लगभग सात प्रतिशत आबादी के साथ विश्व का चौथा सबसे बड़ा धर्म है। सबसे अधिक आबादी वाले देशों में कंबोडिया, थाईलैंड, बर्मा, भूटान, श्रीलंका, लाओस, मंगोलिया, जापान, सिंगापुर, ताइवान, चीन और भारत आते हैं। हालाँकि भारत में एक प्रतिशत के लगभग आबादी बौद्ध धर्म से जुड़ी हुई है।

भारत में बौद्ध धर्म से जुड़े कुछ महत्त्वपूर्ण स्थान हैं—अरुणाचल में बोमदिला और त्वांग, सिक्किम में कलिंपोंग और रुंटेक, पश्चिमी बंगाल में दार्जिलिंग और कोलकाता, आंध्र प्रदेश में अमरावती, सलिहुंडा, बोरह गुफाएँ और नागर्जुनकोंडा, मध्य प्रदेश में सरदराह, सांची और मुरकोट, उड़ीसा में ललितगिरि, रत्नागिरि व उदयगिरि, धौलागिरि, हरियाणा में यमुनानगर, असंघ और सुघ के स्तूप, हिमाचल प्रदेश में स्फिति, किन्नौर और धर्मशाला तथा जम्मू-कश्मीर में लद्दाख, हर्वान, अंबरानी और परिहस्पुर, महाराष्ट्र में अजंता-एलोरा और कन्हेरी गुफाएँ आदि।

इस तरह आज भी पूरे भारत में बौद्ध धर्म एक विशिष्ट रूप में उपस्थित है। वैदिक धर्म से उसका उद्भव होने के कारण मूलत: इसका यहाँ के सनातन धर्म व इसके विभिन्न स्वरूपों से किसी तरह का टकराव नहीं रहा है और इसकी सौहार्दपूर्ण अंतर्धारा भारत में भी प्रवाहमान है। भगवान बुद्ध की जीवनयात्रा के समय में उनके द्वारा प्रव्रज्या के काल में स्पर्श किए गए वे सभी स्थान आज भी उनकी चेतना की उपस्थिति का जीवंत प्रमाण हैं। साथ ही भगवान बुद्ध का करुणामयी ध्यानस्थ स्वरूप एवं उनका दु:ख से निवृत्ति का अष्टांग मार्ग सबके लिए वरेण्य है। ❑

सब बंधनों को त्याग मानवता की सेवा को निकले गुरु नानकदेव



एक दिन गुरु नानकदेव नदी में स्नान करने गए। नदी में स्नान करके जब वे बाहर आए, तब वे नदी के तट पर आसन जमाकर वहीं बैठकर ध्यान करने लगे। ध्यान की गहन अवस्था को पार कर वे गहन समाधि में डूब गए। समाधि की गहन अवस्था में उन्हें परमात्मा के प्रकाश का अनुभव हुआ।

परमात्मा ने उन्हें आशीर्वाद दिया और कहा—''नानक! मैं सदा तुम्हारे साथ हूँ। तुम संसार में जाओ और लोगों को सत्य मार्ग पर लाओ। मैंने अपने नाम से तुम्हें उपकृत किया है। तुम जिस पर कृपा करोगे, उस पर मेरी भी कृपा होगी।'' कहते हैं कि इसके पश्चात नानक ने परमात्मा के चरणों में सिर झुकाया और वे समाधि से बाहर आए।

तब उनके मुख से सहसा ये शब्द निकले—''मैं किसी हिंदू को नहीं देखता; किसी मुसलमान को नहीं देखता; मैं केवल मनुष्य को देखता हूँ।'' दरअसल जब साधक में परमात्मा का पूर्ण प्रकाश उतर आता है, तब वह भी परमात्मरूप ही हो जाता है। उसकी दृष्टि जाति, धर्म, संप्रदाय को नहीं देखती। उसकी दृष्टि में तो यह सारा विश्व-ब्रह्मांड ही परमात्मामय दिखने लगता है। वह सबका और सब उसके हो जाते हैं। तब अपना-पराया का कोई भेद उसमें नहीं रह जाता।

समाधि में परमात्मा के प्रकाश को पाते ही गुरु नानकदेव परमात्मस्वरूप हो गए। वे सबके और सब उनके हो गए। समाधि की अवस्था में मिले परमात्मा के आदेश के पालन हेतु वे तत्पर हुए। घर के सगे-संबंधियों ने उन्हें शादी के बंधन में बाँधकर संसार के बंधन में बाँधने का प्रयास भी किया, जिससे कि वे गृहत्याग न कर सकें। उनकी शादी भी हुई, संतानें भी हुईं। रिश्तेदारों ने उन्हें गृहत्याग न करने हेतु कई प्रकार से समझाने, रिझाने का प्रयास भी किया, पर सभी प्रयास निष्फल हुए।

भला जो जनमानस को सांसारिक माया-मोह के बंधन से मुक्त कर परमात्मा के मार्ग पर चलाने आया था, उसे कोई किसी बंधन में कैसे बाँध सकता था? क्योंकि वे तो सारे बंधन पहले ही तोड़ चुके थे। वे तो भगवद्भक्त थे, फिर भगवद्भक्त को शादी या कोई अन्य बंधन भी कैसे बाँध सकता था? वे पूर्व की भाँति ही भक्ति में लीन रहते, साधु-संतों की सेवा करते और जनमानस को सत्य मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते।

जब उनका अधिकांश समय घर से बाहर भगवद्भक्ति और साधु-संतों की सेवा में ही बीतने लगा तो घर के लोग एक बार फिर चिंतित हुए। सबने उन्हें घर-गृहस्थी के कार्य में मन लगाने का सुझाव दिया, पर नानकदेव तो अपना मन पहले ही परमात्मा को दे चुके थे। वे कहते कोई मुझे भूत कहता है और कोई बेताल। कोई मुझे पागल और कोई दीवाना कहता है, पर मैं तो पागलों की भाँति ईश्वर का दीवाना हूँ। मैं परमात्मा के अतिरिक्त किसी को जानता नहीं। मैं तो उसी ईश्वर की आज्ञा का पालन करता हूँ और उसी से प्रेम करता हूँ।

नानकदेव ने नवाब की नौकरी भी छोड़ दी और घर-गृहस्थी के काम-काज को छोड़कर अपने आप को पूर्णत: परमात्मा के चरणों में समर्पित कर दिया। वे घर छोड़कर अब जंगल में जाकर परमात्मा का ध्यान करने लगे। उनके पिता दौड़े-दौड़े उनके पास पहुँचे और कहा— ''पुत्र! देखो मैं अब वृद्ध हो चुका हूँ। तेरी माँ भी वृद्ध हो चुकी है। अब तुम्हीं हमारे बुढ़ापे का सहारा हो। तुम्हारे बिना हमारा कौन है, इस दुनिया में?''

नानक पिता की बातें बड़े ध्यान से सुनते रहे, फिर समझाते हुए बोले—''पिताजी! आप यह क्यों कहते हैं कि मेरे सिवा आपका कोई सहारा नहीं? आपका सहारा वही परमात्मा है, जो सबका सहारा है। मेरा जन्म घर-गृहस्थी तक सीमित रहने एवं आपकी सेवा करने मात्र के लिए नहीं हुआ है। मैं तो मानव जाति की सेवा के लिए यहाँ आया हूँ। इसलिए पिताजी, मुझे आप आशीर्वाद दीजिए कि मैं मानव जाति की सेवा कर सकूँ। आप मेरे पिता हैं, पर आपसे बड़े

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

परमपिता हैं, जो इस संसार के पिता हैं। मुझे उन परमपिता की आज्ञा का पालन करने दीजिए।''

नानक की बातें सुनकर पिता महताकालू जी चुप हो गए। इसके बाद नानक के श्वसुर मूलचंद जी उन्हें समझाने, मनाने को आए और वे कहने लगे—''बेटा नानक! तुम गृहत्याग कर रहे हो, पर तुम मेरी पुत्री और अपने पुत्रों की ओर भी तो देखो। उनका क्या होगा? उनका लालन-पालन कौन करेगा?''

नानक बोले—''बाबा जी! आप भी मेरे पिता योग्य ही हैं। आप अपनी पुत्री और मेरे पुत्रों की चिंता न करें। उन सबों की रक्षा, पालन-पोषण ईश्वर करेगा। यह सारा संसार ही मेरा देश है। मानवता मेरा धर्म है। मुझे ईश्वर ने पूरी मानव जाति की सेवा के लिए भेजा है और इसलिए मैं पहले अपने ईश्वर की आज्ञा का पालन करूँगा। अत: आप तो बस, मुझे इस शुभ कार्य को पूरा करने का आशीर्वाद दें।''

बाबा मूलचंद भी भला अब उन्हें और क्या कह सकते थे। वे मन-ही-मन अपनी पुत्री और नातियों के भविष्य को लेकर चिंतित हो रहे थे, परंतु नानकदेव की बातों ने उनकी चिंता को बहुत हद तक कम कर दिया। तब नानक की माता उनके पास पहुँचीं। वे भी मन-ही- मन दु:खी हो रही थीं।

उनकी माता एक आदर्श माँ थीं, जिनका एकमात्र पुत्र घर त्यागकर जा रहा था। वे अपने पुत्र को जुदा करके खुश कैसे रह सकती थीं? उस माँ की आँखों से ममता, वात्सल्य, प्रेम आँसू बनकर बह रहे थे, पर नानक जी तो सारे बंधन तोड़ सत्य के हो गए थे। वे तो अब सबके और सब उनके हो गए थे। उनके सामने तो इस समय मानवता की आँखों से बह रहे आँसू महत्त्वपूर्ण थे।

नानकदेव ने अपनी माता के चरणों की धूल अपने मस्तक से लगाते हुए कहा—''माँ! तुम जानती हो, आपसे ऊपर एक और जगन्माता हैं, जिनकी सेवा के लिए मैं जा रहा हूँ। मुझे अपने कर्त्तव्य का पालन करने दो माँ! मुझे मत रोको। तुम्हारा पुत्र एक महान कार्य के लिए जा रहा है, उसे जाने दो।''

माता तृप्ता भी इसके आगे कुछ न बोल सकीं। जब सभी थक-हारकर एक ओर खड़े हो गए तो उनकी पत्नी सुलक्षणी ने अपनी झोली फैलाते हुए कहा—''हे नाथ! आप हमें छोड़कर जा रहे हैं। मेरा नहीं तो इन बच्चों का तो ख्याल करो। आपके बिना इन्हें कौन सँभालेगा?'' नानक बोले—''सुलक्षणी! इनको सँभालने वाला ईश्वर है, वह ईश्वर जो हमें जन्म देता है। वही ईश्वर हमारा पालन-पोषण करता है। उसी ईश्वर की इच्छा से मैं यहाँ से जा रहा हूँ। मुझे खुशी से जाने दो। मैं अपना कार्य पूरा करने के पश्चात फिर आऊँगा। रोने से किसी चीज का उपाय नहीं होता। ईश्वर तुम सबकी रक्षा करेगा। वह सदा तुम्हारे संग-संग रहेगा।''

इसके बाद नानक की दुलारी बहन नानकी ने उन्हें रोकने का यत्न किया; क्योंकि नानकी का अपने भैया से बहुत ही प्यार था। इसलिए सबको यह विश्वास था कि अपनी दुलारी, प्यारी बहन नानकी के कहने पर नानक अवश्य ही घर लौट चलेंगे, पर नानक ने अपनी बहन के सामने हाथ जोड़ते हुए कहा—''बहन! तुम क्यों चिंता कर रही हो। जिस समय भी तुम मुझसे मिलने की इच्छा प्रकट करोगी, मैं तुमसे मिलने आ जाया करूँगा।'' इस पर बहन नानकी बोली—''यह तो अनहोनी है, ऐसा कैसे संभव हो सकेगा?'' नानक मुस्कराए और बोले—''बहन नानकी! मैं ईश्वर के आशीर्वाद से अनहोनी को भी होनी कर दूँगा।''

इस प्रकार नानकी भी चुप हो गई और मानकदेव सारे बंधन तोड़कर परमात्मा के निर्देश पर मानवता की सेवा को चल पड़े। वे आजीवन मानवता की सेवा में लगे रहे। जगत् भ्रमण करते रहे और जगत्-पूज्य बने। ❑

जनमानस का भावनात्मक नवनिर्माण करने के लिए जिस विचार क्रांति की मशाल इस ज्ञानयज्ञ के अंतर्गत जल रही है, उसके प्रकाश में अपने देश और समाज का आशाजनक उत्कर्ष सुनिश्चित है। स्वतंत्र चिंतन के अभाव ने हमें मूढ़ता और रूढ़िवादिता के गर्त में गिरा दिया। तर्क का परित्याग कर हम भेड़ियाधसान— अंधविश्वास की दलदल में फँसते चले गए। विवेक छोड़ा तो उचित-अनुचित का ज्ञान ही न रहा। गुण-दोष विवेचन की, नीर-क्षीर विश्लेषण की प्रज्ञा नष्ट हो जाए तो फिर अँधेरे में ही भटकना पड़ेगा। *—परमपूज्य गुरुदेव*

ग्लेशियर पर ग्लोबल वार्मिंग का प्रभाव



ग्लोबल वार्मिंग का खतरनाक प्रभाव अब स्पष्ट रूप से दिखने लगा है। इसी का प्रभाव है कि गरमियाँ आग उगलने लगी हैं और सरदियों में गरमी का एहसास होने लगा है। इसकी वजह से ग्लेशियर तेजी से पिघल कर समुद्र का जलस्तर तीव्रगति से बढ़ा रहे हैं। ऐसे में मुंबई समेत दुनिया के कई हिस्सों एवं महानगरों-नगरों के डूबने की आशंका तेजी से बढ़ चुकी है। इसका खुलासा अमरीकन नेशनल अकादमी ऑफ साइंस ने किया है।

उन्होंने अपने अध्ययन में दुनिया के सात शहरों पर ग्लोबल वार्मिंग के कारण पड़ने वाले प्रभाव के बारे में विस्तार से बताया है। अकादमी ने तापमान में दो और चार डिगरी बढ़त के आधार पर अपना निष्कर्ष जारी किया है। दावा किया गया है कि तापमान के दो डिगरी बढ़ने पर गेटवे ऑफ इंडिया चारों तरफ से पानी से जलमग्न हो जाएगा। इसका यदि तापमान चार डिगरी बढ़ा तो मुंबई अरब सागर में समा जाएगी।

पर्यावरण के निरंतर बदलते स्वरूप ने निस्संदेह बढ़ते दुष्परिणामों पर सोचने पर मजबूर किया है। औद्योगिक गैसों के लगातार बढ़ते उत्सर्जन और वन आवरण में तेजी से हो रही कमी के कारण ओजोन गैस की परत का क्षरण हो रहा है। इस अस्वाभाविक बदलाव का प्रभाव वैश्विक स्तर पर हो रहे जलवायु-परिवर्तनों के रूप में दिखलाई पड़ता है।

सार्वभौमिक तापमान में लगातार होती इस वृद्धि के कारण विश्व के ग्लेशियर तेजी से पिघलने लगे हैं। उदाहरण के तौर पर अंटार्कटिका के डूम्सडे ग्लेशियर का पिघलना पहले ही वैज्ञानिकों के लिए एक चिंता का कारण बन चुका है। ग्लेशियर के तेजी से पिघलने के कारण महासागर में जलस्तर में ऐसी ही बढ़ोत्तरी होती रही तो महासागरों का बढ़ता हुआ क्षेत्रफल और जलस्तर एक दिन तटवर्ती स्थल, भागों और द्वीपों को जलमग्न कर देगा। ये स्थितियाँ भारत में हिमालय के ग्लेशियर के पिघलने से एक बड़े संकट का कारण बन रही हैं।

ग्लेशियर का पिघलना सदियों से जारी है, लेकिन पर्यावरण पर हो रहे विभिन्न हमलों के कारण इनका दायरा हर साल बढ़ रहा है। खूब बारिश और बरफबारी से ग्लेशियर लगातार बरफ से ढके रहते थे। मौसम ठंढा होने की वजह से ऊपरी इलाकों में बारिश के बजाय बरफबारी होती थी, लेकिन सन् 1930 के आते-आते मौसम बदला और बरफबारी में कमी आने लगी।

इसका प्रभाव ग्लेशियरों पर भी पड़ा। ये बढ़ने के बजाय पहले स्थिर हुए, फिर पिघलते ग्लेशियरों का दायरा बढ़ने लगा। गंगोत्तरी ग्लेशियर पिछले दो दशक में हर साल पाँच से बीस मीटर की गति से पिघल रहा है। उत्तराखंड के पाँच अन्य प्रमुख ग्लेशियर सतोपंथ, मिलाम, नीति, नंदा देवी और चोराबाड़ी भी लगभग इसी गति से पिघल रहे हैं।

भारतीय हिमालय में कुल 9975 ग्लेशियर हैं। इनमें से 900 ग्लेशियर सिर्फ उत्तराखंड हिमालय में हैं। इन ग्लेशियरों से 150 से अधिक नदियाँ निकलती हैं, जो देश की 40 प्रतिशत आबादी को जीवन दे रही हैं। अब इसी बड़ी आबादी के आगे संकट है। हाल के दिनों में हिमालयी राज्यों में जंगलों में आग की जो घटनाएँ घटीं, वे ग्लेशियरों के लिए नया खतरा हैं। वनों में आग तो पहले भी लगती रही है, पर ऐसी भयानक आग काफी खतरनाक है। आग के धुएँ से ग्लेशियर के ऊपर जमी कच्ची बरफ तेजी से पिघलने लगी है। इसके व्यापक दुष्परिणाम होंगे। काला धुआँ कार्बन के रूप में ग्लेशियरों पर जम जाएगा, जो भविष्य में उस पर नई बरफ को टिकने नहीं देगा।

पूरी दुनिया में ग्लेशियरों के पिघलने की घटनाओं पर व्यापक शोध एवं अनुसंधान हो रहे हैं, लेकिन भारतीय ग्लेशियरों के पिघलने की स्थितियों पर न अध्ययन हो रहा है, न ही उसको नियंत्रित करने के कोई उपाय होते हुए दिखाई दे रहे हैं। इन गंभीर होती स्थितियों पर काम करने वाले कुछ पर्यावरण संरक्षकों ने देश के लिए ग्लोबल वार्मिंग के खतरों के संकेत देने शुरू कर दिए हैं।

साथ ही यह सवाल भी खड़ा किया है कि भारत इसका मुकाबला कैसे करेगा। भारतीय अंतरिक्ष अनुसंधान संस्थान के उपग्रह इमेजरी से हुए एक ताजा अध्ययन में 466 ग्लेशियरों के आँकड़े जमा किए हैं, जिनसे पता चलता है कि सन् 1962 से अब तक इनका आकार तीस फीसदी तक कम हुआ है। कई बड़े ग्लेशियर छोटे टुकडों में टूट गए हैं और सब तेजी से पिघल रहे हैं। इस इलाके के सबसे बड़े ग्लेशियरों में से एक पार्वती के अध्ययन में पाया गया है कि हर साल 170 फीट की रफ्तार से पिघल रहा है।

हिमालय के ग्लेशियरों के पिघलने से दुनिया खासी चिंतित है, खासतौर पर भारत और पड़ोसी देशों पर पड़ने वाले इसके दुष्प्रभाव को लेकर। हिमालय के ग्लेशियरों को दक्षिण एशिया की जल-आपूर्ति का प्रमुख साधन माना जाता है। ये उन दर्जनों नदियों को जल प्रदान करते हैं, जो करोड़ों लोगों का जीवन सँवारती हैं, उनके जीने का आधार हैं।

इनके तेजी से पिघलने का अर्थ है पीने के पानी की कमी और कृषि-उत्पादन पर संकट का मँडराना। साथ ही ये बाढ़ और बीमारियों जैसी समस्याओं को भी जन्म देते हैं। एक अरब, तीस करोड़ की आबादी के साथ लगातार तरक्की कर रहा भारत जल्द ही ग्रीन हाउस गैसों का ज्यादा बड़ा उत्पादक बन जाएगा। जो भी हो, मानव की दखल से हो रहे इस जलवायु बदलाव का भारत पर असर काफी भयानक होगा।

वैज्ञानिक जानकारी का अभाव भी इस खतरे को और बढ़ा सकता है। नदियों के प्रभाव के आँकड़े इतने कम हैं कि हम समझ ही नहीं सकते कि ग्लेशियर के किस हद तक पिघलने का नदियों पर क्या प्रभाव होगा। दुनिया भर में ग्लेशियर ग्लोबल वार्मिंग के बैरोमीटर माने जाते हैं। ग्रीन हाउस गैसों के प्रभाव से पूरी दुनिया के साथ ही हिमालय भी गरम हुआ है।

हाल में हुए एक अध्ययन में पाया गया कि उत्तर पश्चिमी हिमालय के औसत तापमान में पिछले दो दशक से 2.2 डिगरी सेल्सियस की बढ़ोतरी हुई है। यह आँकड़ा उसके पहले के सौ साल में हुई बढ़ोतरी से कहीं ज्यादा है। अध्ययन में यह भी अनुमान लगाया गया है कि जैसे-जैसे ये ग्लेशियर पिघलेंगे, बाढ़ की विभीषका भी बढ़ेगी, प्राकृतिक आपदाएँ घटित होंगी और उसके बाद नदियाँ सूखने लगेंगी।

इसका दोष दुनिया के औद्योगीकरण एवं सुविधावादी जीवनशैली, जिनमें बढ़ते वाहन एवं वातानुकूलित साधनों के विस्तार को ही दिया जा सकता है—जिनसे ऐसी गैसों का उत्सर्जन हो रहा है, जो ओजोन के साथ-साथ ग्लेशियरों के लिए खतरनाक हैं। उन पर पाबंदी लगाने में हम नाकाम हो रहे हैं।

ग्लोबल वार्मिंग को रोकना तो सीधे तौर पर हमारे बस में नहीं है, लेकिन हम ग्लेशियर-क्षेत्र में तेजी से बढ़ती मानवीय गतिविधियों को रोककर ग्लेशियरों पर बढ़ते प्रदूषण के प्रभाव को कम कर सकते हैं। इस क्षेत्र में मानवीय गतिविधियों को पूरी तरह प्रतिबंधित करने के अलावा कई ऐसी तकनीकें हैं, जिनसे ग्लेशियर और बरफ को लंबे समय तक बचाए रखा जा सकता है।

उच्च हिमालयी क्षेत्रों में रहने वाले लोग पुराने समय में बरसात के समय छोटी-छोटी क्यारियाँ बनाकर पानी को रोक देते थे। तापमान शून्य से नीचे जाने पर यह पानी जमकर बरफ बन जाता था। इसके बाद स्थानीय लोग इस पानी के ऊपर नमक डालकर मलबे में ढक देते थे। लंबे समय तक यह बरफ जमी रहती और गरमियों में लोग इसी से पानी की जरूरतें पूरी करते थे।

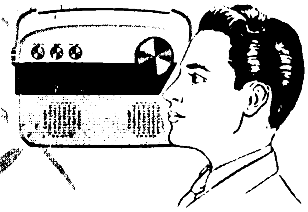
इसी तरह स्नो हार्वेस्टिंग का काम भी होना चाहिए। बरफ की बड़ी सिल्लियों को मलबे में दबाकर रखा जा सकता है, जो लंबे समय तक बरफ को जीवित रख सकती हैं। अब इन पुराने उपायों को फिर से अपनाने की जरूरत है, साथ ही नवीन तकनीक विकसित किए जाने की जरूरत है, ताकि इस बड़े संकट से बचा जा सके। मनुष्य जीवन पर मँडरा रहे खतरों को नियंत्रित किया जा सके। अब हमें सावधान एवं सतर्क हो जाना चाहिए अन्यथा यह संकट कहीं और भी गंभीर न हो जाए। ❑

योग आत्मा चरणमस्य बन्धुर्दमः प्रतिष्ठा विदुषो न भूमिम्।

अर्थात योगाभ्यास ही साधक की आत्मा है, ज्ञान-प्रचार हेतु नित्य विचरण उसका बंधु है, मात्र इंद्रियनिग्रह ही उसकी प्रतिष्ठा (भूमि) नहीं है।

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

प्रसन्न रखने वाले जैव रसायन



जीवन में परिस्थितियों के उतार-चढ़ाव के बीच प्रसन्न रहने के लिए अब जैव रसायनों की भूमिका सुनिश्चित हो चुकी है। लेकिन इनका संबंध परिवेश, जीवनशैली एवं मनःस्थिति से भी सीधा जुड़ा हुआ है। इस आधार पर हम अपने चिंतन व जीवनशैली को अनुशासित करते हुए, इनमें छोटे-छोटे सुधार करते हुए हैप्पीनेस हॉर्मोन्स को सक्रिय कर सकते हैं और एक प्रसन्न एवं संतोषजनक जीवन जी सकते हैं। इस पृष्ठभूमि में डोपामिन, ऑक्सिटोसिन, एन्डोर्फिन, सिरोटोनिन जैसे हैप्पीनेस हॉर्मोन्स पर प्रकाश डाला जा रहा है।

डोपामिन को दि रिवार्ड रसायन भी कहा जाता है। यह हमें जीवंत और सजग रखते हुए प्रसन्नता का अवदान देता है। यह हमारे कार्य से जुड़ी उपलब्धि एवं संतुष्टि से जुड़ा हुआ है, जब हम अपना निर्धारित लक्ष्य हासिल करते हैं, अपने कर्त्तव्यों का सही ढंग से निर्वाह करते हैं, तो इसका स्राव होता है और एक खुशनुमा एहसास जीवन में तैरता है।

इसका आत्मसुधार एवं आत्मनिर्माण की गतिविधियों से सीधा संबंध है। अतः जितना हम अपने जीवन-ध्येय की ओर बढ़ते हैं, उतना हम बेहतर अनुभव करते हैं। अतः हम यथार्थवादी लक्ष्यों को निर्धारित करें, उन्हें उपलब्ध करने के प्रयास में डटे रहें। प्रतिदिन अपनी बेहतरी के लिए निर्धारित दिनचर्या एवं कार्यक्रमों को एक-एक कर हासिल करते जाएँ व तत्काल जीवन में इसका सकारात्मक प्रभाव अनुभव करें।

यह भी पाया गया है कि पचास प्रतिशत डोपामिन आँतों में तैयार होता है, अतः हमारे मानसिक स्वास्थ्य और निरोगिता के लिए इस ओर ध्यान देना आवश्यक हो जाता है। इस तरह मनपसंद पौष्टिक भोजन करने पर भी इसका स्राव होता है, बस, ध्यान इतना ही रहे कि वह प्राकृतिक हो, आपके स्वास्थ्य के लिए हानिकारक न हो और दूसरे प्राणियों की हिंसा व दोहन-शोषण से प्राप्त न हो। इसके साथ मनपसंद संगीत सुनने से भी डोपामिन में वृद्धि होती है, अतः ऐसे संगीत का भरपूर लाभ लें।

ऑक्सिटोसिन दूसरा हैप्पीनेस हॉर्मोन है, जिसे भावनात्मक हॉर्मोन के नाम से भी जाना जाता है। यह आपसी संबंधों व विश्वास से जुड़ा हुआ जैव रसायन है, जो प्रकारांतर में हमारी प्रसन्नता में बृद्धि करता है। कैलिफोर्निया की क्लेरमोंट यूनिवर्सिटी में महिलाओं पर इसके प्रभाव को लेकर व्यापक शोध हुए हैं व इसके स्राव को जीवन की संतुष्टि के स्तर से जोड़कर देखा गया है।

पुरुषों की अपेक्षा यह महिलाओं के शरीरक्रिया विज्ञान व प्रसन्नता पर अधिक प्रभाव डालता है। अपने प्रिय लोगों के साथ समय बिताने व दूसरों के प्रति दया-भाव रखने से ऑक्सिटोसिन स्रावित होता है। इस हॉर्मोन का निरोगिता एवं दीर्घायुष्य के साथ संबंध पाया गया है।

इसे आत्मीयता विस्तार से जुड़ा हॉर्मोन कह सकते हैं। जितना हम अपने संकीर्ण दायरे से ऊपर उठते हैं, दूसरों से जुड़ते हैं, जरूरतमंदों के काम आते हैं, इस हॉर्मोन का स्राव होता है और जीवन में प्रसन्नता का संचार होता है। निस्संदेह रूप में अपने लोगों का आत्मीय स्पर्श भी इसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसके साथ पालतू पशुओं के साथ अपनत्व भरे पल इसको उत्सर्जित करते हैं, अतः पालतू पशुओं के साथ बिताया गया समय महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

दूसरों के साथ घुलने-मिलने व सामाजिकीकरण की प्रक्रिया इसमें सहायक बनती है तथा दूसरों की मदद से इसमें वृद्धि होती है। इस संदर्भ में आपसी संबंधों में विश्वास, दायित्वबोध, उदारता, कृतज्ञता जैसे सद्गुणों के अभ्यास के महत्त्व को समझा जा सकता है। कुल मिलाकार स्वार्थ से परमार्थ की यात्रा, मैं से हमारे का भाव, मेरे के बजाय हम सबका विकास ऑक्सिटोसिन हॉर्मोन के स्राव के साथ प्रसन्नता का आधार बनता है।

अतः आवश्यक हो जाता है कि आज के सोशल मीडिया के युग में मोबाइल के बजाय अपने बच्चों, परिवारजनों व पालतू जानवरों के साथ अधिक समय बिताएँ, जो जीवन

की खुशहाली व प्रसन्नता की दृष्टि से एक समझदारी भरा कदम होगा।

एन्डोर्फिन्स एक दरदनिवारक या दरदरोधी हॉर्मोन है। यह जीवन की प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाकर जीवन में कष्टों के बीच भी एक संतुलित जीवन का आधार देता है और जीवन की प्रसन्नता में वृद्धि करता है। हम कितना व्यायाम करते हैं, गीत-संगीत सुनते हैं, स्वस्थ मनोरंजन में भाग लेते हैं तथा हलका-फुलका, मुस्कराता, हँसता-खिलखिलाता जीवन जीते हैं, इनसे एन्डोर्फिन हॉर्मोन का स्राव होता है, जो एक स्वस्थ एवं नीरोग जीवन को पुष्ट करता है तथा यह जीवन में खुशनुमा एहसास को बल देता है।

सिरोटोनिन एक मनोदशा को संतुलित करने वाला हॉर्मोन है। अवसाद के उपचार में उपयुक्त की जाने वाली एसएसआरआई (सलेक्टिव सिरोटोनिन रिअपटेक इन्हिबिटर) औषधि के कारण यह चर्चा में आया था, जो मस्तिष्क के सिरोटोनिन स्तर को बढ़ाता है। सिरोटोनिन को प्राकृतिक रूप से बढ़ाने का सबसे प्रभावशाली तरीका है नियमित व्यायाम।

यही कारण है कि तेज चहल-कदमी मिजाज में आश्चर्यजनक परिवर्तन लाती है। शोध के आधार पर पाया गया है कि इसके निर्माण में भी आँत के जीवाणुओं की भूमिका रहती है। ऐसे में रेशेयुक्त तथा कम चिकनाई वाले आहार इसमें बहुत उपयोगी रहते हैं। रेशेयुक्त मोटा अन्न व कार्बोहाइड्रेट सिरोटोनिन के स्तर को बढ़ाता है, यही कारण है कि जब हमारा मिजाज कुछ बिगड़ा होता है, तो हमारा मन मीठे व स्टार्चयुक्त भोजन की ओर जाता है।

सूर्य की रोशनी में सूर्यस्नान से लेकर प्रकृति की गोद में पंचतत्त्वों का सान्निध्य सिरोटोनिन को स्रावित करता है। इसके साथ ध्यान व मन की शांत, स्थिर व एकाग्र मनोभूमि इसमें बढ़ोतरी करते हैं। इस आधार पर जीवन अधिक संतुलित, प्रसन्न व आंतरिक रूप से खुशहाल बनता है।

एस्ट्रोजन, सिरोटोनिन के निर्माण में सहायता करता है और चिड़चिड़ाहट एवं उद्विग्नता से रक्षा करता है। यह बढ़ती आयु के साथ धूम्रपान तथा अत्यधिक व्यायाम जैसे जीवनशैली के कारकों से घटता है। इसका असंतुलन मिजाज के विकार का कारण बनता है। तनाव का प्रबंधन इन हॉर्मोन्स के स्राव को संतुलित करता है; क्योंकि कोर्टिसोल जैसा तनाव हॉर्मोन प्रसन्नता के उपरोक्त दो हॉर्मोन्स के स्राव में व्यवधान उत्पन्न करता है। योग व ध्यान जैसी तनाव से मुक्त करने वाली गतिविधियाँ एस्ट्रोजन के स्तर को बढ़ाती हैं। अपनी प्रकृति के अनुरूप व मौसम को देखते हुए गरम या ठंढे जल से स्नान के साथ इस दिशा में प्रयोग किए जा सकते हैं।

प्रोजेस्ट्रोन उद्विग्नता, चिड़चिड़ाहट व मिजाज में बिगाड़ को रोकता है तथा बेहतर नींद में सहायक बनता है। प्राय: महिलाओं में 35-40 वर्ष की आयु के बाद इस हैप्पी हॉर्मोन का स्तर गिरता है और अत्यधिक तनाव तथा असंतुलित आहार से इसकी गिरावट और तीव्र हो जाती है। विशेषज्ञों के अनुसार सही भोजन तथा संतुलित जीवनचर्या इस हॉर्मोन को संतुलित करने का एक कारगर उपाय है।

इस तरह जीवन की गुणवत्ता को सुनिश्चित करने वाले इन हैप्पीनेस हॉर्मोन्स की प्रकृति को समझते हुए, उचित परिवेश, प्राकृतिक जीवनशैली, संतुलित आहार-विहार एवं सकारात्मक चिंतन के साथ इनके स्राव को नियमित करते हुए एक अधिक स्वस्थ, नीरोग एवं प्रसन्न जीवन को सुनिश्चित किया जा सकता है। ❑

एक व्यक्ति एक संत से बोला—''महाराज! मेरे जीवन में तनाव बहुत है। क्या करूँ, मेरी कोई इच्छा पूर्ण ही नहीं होती और तनाव बढ़ता ही जाता है।'' संत बोले—''बेटा! रामचरितमानस में तुलसीदास जी लिखते हैं—'विषय मनोरथ दुर्गम नाना। ते सब सूल नाम को जाना।' अर्थात इस संसार में जितनी इच्छाएँ हैं, वे सब काँटे के समान हैं। वे जितनी बढ़ती जाती हैं, उतना ही मन पीड़ित होता जाता है। इसलिए इच्छाएँ पूर्ण करने की दौड़ में पड़ने के बजाय जितना है, उसमें संतोष करने का प्रयत्न करो तो जीवन स्वत: ही तनावमुक्त हो जाएगा।''

जल–उपवास : प्रक्षालन प्रयोग



विगत अंक में आपने पढ़ा कि सन् 1976 के अक्टूबर महीने में पूज्य गुरुदेव ने चौबीस दिनों के जल-उपवास को करना आरंभ कर दिया। भगवान की योजनाओं को पूर्ण करने हेतु समय-समय पर स्वयं की तप-ऊर्जा की आहुति देते चले आ रहे पूज्यवर ने सदैव की भाँति इस बार भी अपने इस उपक्रम को गुप्त ही रखा, किंतु समय के साथ इस शुभ संकल्प की सूचना क्रमशः वंदनीया माताजी व शांतिकुंज परिवार से प्रसारित होती क्षेत्र के गायत्री परिजनों तक जा पहुँची। पूज्य गुरुदेव द्वारा सन् 1952 में मथुरा में सफलतापूर्वक संपन्न किए गए इसी तप की पुनरावृत्ति के संकल्प को सुनकर उस दौर के कुछ वरिष्ठ निकटवर्तीजन अत्यंत चिंतित एवं विचलित हुए, जिन्हें वंदनीया माताजी ने सँभाला तो वहीं क्षेत्र के गायत्री परिजनों के मध्य इस घटना को लेकर छाए ऊहापोह का समाधान व समुचित मार्गदर्शन पूज्य गुरुदेव ने अखण्ड ज्योति के सशक्त माध्यम से किया। आइए पढ़ते हैं इसके आगे का विवरण ...

चौकी लगाने का मतलब गायत्री की विशेष साधना के लिए वेदी सजाना था। बात समझ में नहीं आई। जाधव भाई ने पूछा कि गुरुदेव की बात तुम क्यों कर रहे हो। तुम कौन हो ? कहीं ऐसा-वैसा मानस (मनुष्य) तो नहीं। इस पर आगंतुक ने सिर्फ इतना ही कहा—''तुम्हारी तुम जानो। मेरा फर्ज संदेश पहुँचाना था, पहुँचा दिया। तुम्हारा गुरु उपवास पर बैठने वाला है।'' सुनकर जाधव भाई सहज हुए और आगंतुक ने जैसा बताया था, वैसा ही किया।

5 अक्टूबर को वाराणसी और आस-पास के कुछ कार्यकर्त्ता विंध्येश्वरी देवी गए थे। उन कार्यकर्त्ताओं में कुछ ने दर्शन के समय अनुभव किया कि विग्रह ने अपना स्वरूप बदल लिया है और प्रातः-सायं गायत्री की जिस छवि की आराधना-उपासना कर रहे हैं, उसी के दर्शन हो रहे हैं। उस छवि में गुरुदेव की छाया भी बीच- बीच में दिखाई पड़ती है। पूरी तरह तो नहीं, पर ग्रीवा से ऊपर का शिरोभाग साफ दीख रहा है। कोई संदेश दिया जा रहा था। कही हुई बात स्पष्ट नहीं सुनाई देती। ध्यान लगाकर सुनने पर आभास होता है—जप करो-तप करो। गुरुदेव के मुँह से तीन बार यह संदेश सुनाई दिया और वे परिजन वहीं बैठकर जप करने लगे। चालीस मिनट बाद उठे और निश्चय किया कि आज के दिन से उपवास भी करना है। यहाँ चार परिजन हैं। चारों परिजन बारी-बारी से उपवास करें और अपने गाँव पहुँचकर अखंड जप की व्यवस्था बनाएँ।

रमता जोगी-तपता तपसी

मध्य प्रदेश के कुछ गाँवों में प्रभाती गाते हुए अलख जगाने का रिवाज है। सुबह चार-पाँच बजे कुछ साधु दो-दो की मंडली में या अकेले भी डमरू बजाते हुए फेरी लगाते हैं। चलते-चलते सौ-दो सौ कदम की दूरी पर रुककर खड़े हो जाते हैं और कुछ वचन बोलते हैं। मालवा के परुखेड़ी गाँव में एक साधु ने फेरी लगाते हुए कहा—''रमता जोगी-तपता तपसी और सुना गुरुवाणी, चौबीस दिन का लंघन (उपवास) करता यह तथ बुझै वो ध्यानी।'' यह वचन गाने के बाद साधु ने अभिलषित भिक्षा की मात्रा का उल्लेख किया और आगे चलता बना। उस गाँव में गायत्री परिवार के चार सदस्य रहते थे। उनमें तीन आस-पास के कसबों में नौकरी-व्यापार के लिए जाते। साधु की वाणी पर विचार किया तो सूझा कि शांतिकुंज फोन लगाया जाए। मंडी में काम कर रहे नाथूराम ने फोन लगाया और पता चला कि गुरुदेव ने जल-उपवास शुरू किया है। उनकी साधना में भागीदारी के लिए अपने यहाँ भी जप-हवन और पाठ आदि के आयोजन की प्रेरणा थी।

जल-उपवास शुरू करने से करीब महीने भर पहले गुरुदेव ने साधना विज्ञान के शोध और नए निर्धारण के बारे में कहा था। इस संबंध में कुछ बिंदुओं पर पत्रिकाओं और पत्राचार में भी गुरुदेव ने चर्चा की थी। गुरुदेव यों कभी-कभार ही पत्र लिखते थे। यह काम माताजी के जिम्मे था। गुरुदेव किसी अत्यंत आत्मीय और निकटवर्ती संत-महात्मा अथवा उच्चकोटि के साधक को ही पत्र लिखते। अक्टूबर महीने में कलकत्ता के गंगाधर घटक के पौत्र अनुनय विश्वास का पत्र आया। विश्वास 1966 में गुरुदेव के संपर्क में आए थे। वे श्री रामकृष्ण परमहंस की परंपरा में हुए स्वामी अखंडानंद के वंशजों में थे। गंगाधर घटक स्वामी अखंडानंद का उनके पूर्व आश्रम का नाम था। उन्होंने स्वामी विवेकानंद के साथ भारत में अनेक स्थानों की यात्रा की और तिब्बत भी गए थे। बाद में वे रामकृष्ण संघ के तृतीय अध्यक्ष बने।

अनुनय विश्वास की उम्र तब साठ वर्ष के आस-पास रही होगी। अपनी किशोर और युवावस्था में उन्होंने काफी समय अपने पितामह के साथ बिताया। स्वामी अखंडानंद ने उन्हें विभिन्न प्रसंगों में श्रीकृष्ण की जन्म और लीलाभूमि में होने वाले एक संत के बारे में बताया था। उन संत के बारे में स्वामी जी का कहना था कि वह गायत्री का अनन्य उपासक और सिद्ध संत होगा। उसके उदय के साथ ही गायत्री-आराधना का प्रचार भी बढ़ने लगेगा। वह विभूति होगा तो संत ही, लेकिन सद्गृहस्थ का जीवन जिएगा और चौथापन शुरू होने के दस, बारह साल पहले नई साधना का अनुसंधान करेगा। उसका स्वरूप रचेगा। अनुनय को बहुत बाद में बोध हुआ कि उनके पितामह ने जिस संत की ओर संकेत किया था, वह वस्तुत: गुरुदेव ही थे।

गुरुदेव का जल-उपवास शुरू होने से करीब दो सप्ताह पहले उन्होंने स्वामी अखंडानंद का एक संस्मरण लिख भेजा था। उस संस्मरण में स्वामी जी ने अपने पूर्व आश्रम की साधना के बारे में बताया था। स्वामी जी पूर्व आश्रम में स्वामी श्री रामकृष्ण परमहंस के पास जाया करते थे। स्वभाव से वे बहुत कट्टरपंथी थे और शास्त्रीय मर्यादा का यथेष्ट पालन किया करते थे। शरीर में बिना तेल लगाए दिन भर में चार बार गंगास्नान करते, बिना तला, बिना मसाले वाला भोजन करते। अपना भोजन स्वयं पकाते थे। भोजन के बाद हलदी चूसते और सिर्फ गंगाजल का ही सेवन करते। जमीन पर सोते और अपना काम अपने ही हाथों से करते।

स्वामी अखंडानंद तब रामकृष्ण परमहंस के संपर्क में नहीं आए थे। संपर्क में आने के बाद प्रात:-सायं संध्या गायत्री का सेवन और डेढ़, दो घंटे तक प्राणायाम का अभ्यास करते। धीरे-धीरे अखंडानंद जी ने प्राणायाम की मात्रा इतनी बढ़ा दी कि शरीर पसीने-पसीने हो उठता था और कँपकँपी छूटने लगती। गंगास्नान के समय उन्होंने प्राणायाम के और प्रयोग भी किए। स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने एक बार उनके साधना-विधान के बारे में पूछा तो उनके प्राणायाम अभ्यास के बारे में सुनकर आश्चर्य जताते हुए अपने मुँह पर हाथ रख लिया। बोले—"ज्यादा प्राणायाम मत किया करो। इस तरह करने से कोई प्राणलेवा व्याधि हो जाएगी। तुम तो जितना हो सके—गायत्री मंत्र का जप किया करो, इसी से कल्याण होगा।"

अखंडानंद जी ने रामकृष्ण परमहंस से पूछा—"प्राणायाम का अभ्यास जरूरी नहीं हैं क्या?" इस पर परमहंस ने कहा—"किसने कहा जरूरी नहीं है, पर उतना ही, जितने से प्राणों का रक्षण और पोषण हो। गायत्री का जप, जितना चाहो कर सकते हो।" स्वामी अखंडानंद के हाव-भाव से लगा कि उन्हें बात गले नहीं उतरी है। रामकृष्णदेव ने कहा—"इस तरह क्या देखते हो? अगले भव (जन्म) में देखोगे कि गायत्री और संध्या का विधि विधान ही बदल गया है। तुम्हें इस जन्म की याद रहेगी तो पाओगे कि मैं तुम्हें उसी पद्धति की ओर ठेल रहा हूँ। अभी इतना ही कि प्रतिदिन यथाशक्य गायत्री का जप करो।"

परमहंस के संकेत

अनुनय ने इस घटना का वृतांत लिखते हुए गुरुदेव से पूछा था—"अब से करीब सौ वर्ष पहले स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने जिस साधना-विधान की बात कही थी, कहीं उसी के अनुसंधान निर्धारण का समय तो नहीं आ गया। आप उसी विधान का शोध तो नहीं कर रहे।" गुरुदेव ने इस पत्र का उत्तर लिखा था—"जब कभी यहाँ आओगे, तभी विस्तार से इस बारे में बातचीत होगी। अभी इतना जानना पर्याप्त है कि स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने आपके पितामह से जिस विधान की बात कही थी, वह निर्धारित हो चुका है। उनके वचनों में तलाशोगे तो पाओगे कि अखंडानंद जी से परमहंस देव ने जिस समय नया साधना-विधान रचे जाने की बात कही थी, वह समय यही है।

पाप-तापों का शमन

गुरुदेव ने जिस दिन जल-उपवास आरंभ किया, उस दिन कई परिजन व्यथित थे। 5 अक्टूबर की सुबह कार्यकर्त्ता और परिजन उन्हें प्रणाम करने पहुँचे तो वे अपने कक्ष में एक तख्त पर पद्मासन लगाए बैठे थे। इस मुद्रा में देख कुछ परिजनों का हृदय और विकल होने लगा। गुरुदेव उनकी विकलता समझ और अनुभव कर रहे थे। सांत्वना देने के लिए उनका दाहिना हाथ आश्वस्त करती हुई मुद्रा में उठ जाता। चिंतित और परेशान साधकों को संदेश मिलता अनुभव होता कि इस उपवास से उत्पन्न ऊर्जा साधकों के पाप-तापों का शमन करेगी।

उपवास करने से पहले गुरुदेव ने जो कारण बताए थे, प्रणाम करने आए परिजनों को प्रतीत होता कि उन्हीं की गूँज अंतर्मन में प्रतिध्वनित हो रही है। जल- उपवास का एक उद्देश्य यह बताया गया था कि स्वर्ण जयंती की विशेष साधना प्रारंभ हुए आठ महीने हो रहे थे। एक लाख साधक गुरुदेव के शब्दों में 'युग' की कुंडलिनी जगाने का पुरुषार्थ कर रहे थे। इस साधना का संरक्षण हिमालय के गुह्य क्षेत्र में बैठी, तप रही दिव्य आध्यात्मिक सत्ताएँ कर रही थीं। उनके द्वारा किया जा रहा संरक्षण दोष-परिमार्जन स्पष्ट अनुभव नहीं हो रहा था। संरक्षण दोष-परिमार्जन की वह प्रक्रिया गुरुदेव के जल-उपवास रूप में प्रत्यक्ष हो रही थी।

जल-उपवास के दिनों में गुरुदेव तीन, चार घंटे ही परिजनों से मिलते थे। यों उनका जीवन खुली किताब की तरह सबके लिए सुलभ था। कोई भी व्यक्ति उन तक अपनी पुकार वैखरी वाणी से भी पहुँचा सकता था। पाँच अक्टूबर से जल-उपवास आरंभ होने पर इस व्यवस्था में थोड़ी रोक लगाई गई। शांतिकुंज के कार्यकर्त्ताओं और गायत्री परिवार के लिए चार घंटे से ज्यादा समय और श्रम देने वालों तथा आत्मिक विकास के लिए प्रखर साधना कर रहे परिजनों के लिए भी मिलने का समय सीमित कर दिया गया। परिजनों तक जल-उपवास की जैसे-जैसे सूचना पहुँचती गई, उनका आना शुरू हो गया। यों उन्हें अपने क्षेत्र में ही रहने और शांतिकुंज आने के लिए आतुर नहीं होने के लिए कह दिया गया था, पर अपनी मार्गदर्शक सत्ता को इस तरह तपते हुए देखना किसे सहन था। उनके आने का सिलसिला शुरू हुआ तो धीरे-धीरे बढ़ता ही गया। गुरुदेव दोपहर बाद नियत अवधि में उनसे भी मिलते रहे। (क्रमशः)

चंद्रपुरी नगर में देवनिपुण नामक एक व्यक्ति रहा करता था। सारे नगर में उसकी ईमानदारी की कथाएँ प्रचलित थीं। एक बार नगर का एक वणिक चंद्रचूड़ जब व्यापारयात्रा पर जाने लगा तो उसने एक थैली स्वर्णमुद्राएँ देवनिपुण के पास धरोहर के रूप में रखीं, परंतु लौटने पर उसे थैली में सौ स्वर्णमुद्राएँ कम मिलीं।

उसने देवनिपुण का बहुत अपमान किया, परंतु वे निर्विकार भाव से सारा अपमान सहन कर गए। घर लौटने पर चंद्रचूड़ को पता चला कि वे स्वर्णमुद्राएँ उसकी पत्नी ने आवश्यक कार्य हेतु देवनिपुण से ले ली थीं।

सत्य का बोध होने पर क्षमा-प्रार्थना हेतु चंद्रचूड़ पुनः देवनिपुण के पास पहुँचा तो भी उन्होंने प्रसन्नता से उसका स्वागत किया। चंद्रचूड़ ने पूछा—''सत्य जानते हुए भी आपने अपमान को क्यों सहन किया?'' देवनिपुण बोले—''सत्य का भान एक-न-एक दिन व्यक्ति को हो ही जाता है। इतनी छोटी बात के लिए संबंधों को विषाक्त करना धर्म नहीं है।'' चंद्रचूड़ ने अनुभव किया कि मान-अपमान में समान रहने वाले ही सच्चे संत होते हैं।

आस्था एवं श्रद्धा का प्रतीक है ईश्वर



इस सृष्टि की रचना के पीछे कोई अदृश्य शक्ति है और उसका संचालन भी उसी के हाथों में है। मानव के एक समूह ने उस शक्ति को 'ईश्वर' या 'प्रभु' का नाम दिया, तो दूसरे समूह ने 'अल्लाह' या 'गॉड' कहकर पुकारा। ये सभी समूह बाद में अलग-अलग धर्मों के रूप में विकसित हो गए।

वास्तव में भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा जाने वाला ईश्वर एक ही है, जिसकी उपस्थिति के प्रति हम अपना विश्वास प्रकट करने के लिए उसकी वंदना करते हैं। उसकी अभ्यर्थना करने का एक माध्यम 'अध्यात्म' भी है। सच तो यह है कि परमात्मा तक पहुँचने का बाहरी मार्ग धर्म यानी कर्म है। वहीं ध्यान के जरिए परमात्मा तक पहुँचने का भीतरी मार्ग अध्यात्म है।

प्रश्न यह उठता है कि मनुष्य ईश्वर को क्यों मानता है? क्या ईश्वर को मानना उसकी जरूरत है या विवशता? उसका भय है या विश्वास? उसकी श्रद्धा है या लोभ? व्यक्ति की ईश्वर के प्रति आस्था के पीछे कौन-सी मनोवैज्ञानिक वजह अधिक प्रभावी होती है, यह शोध का विषय है।

अलग-अलग व्यक्तियों के लिए ईश्वर का स्वरूप भी अलग-अलग ही होता है। कोई ईश्वर को साकार रूप में मानता है, तो कोई निराकार रूप में। किसी के लिए ईश्वर मंदिरों एवं मूर्तियों में बसते हैं, तो किसी के लिए मन-मंदिर एवं दूसरों की सेवा में। किसी के लिए जीवन ही परमात्मा है, तो किसी के लिए आस-पास मौजूद प्रकृति परमात्मा के समान है।

कोई उस तक पहुँचने के लिए भजन-कीर्तन या धार्मिक कर्मकांडों का सहारा लेता है, तो कोई ध्यान एवं योग का। कारण और ढंग भले ही अलग-अलग हों, लेकिन यह सच है कि लोग ईश्वर को किसी-न-किसी रूप में मानते अवश्य हैं। ईश्वर को मानने का चलन सदियों नहीं, युगों पुराना है।

ईश्वर को मानने के पीछे न केवल धार्मिक कारण हैं, बल्कि कई मनोवैज्ञानिक कारण भी हैं। आज मनुष्य चाहे जितना भी विकास कर ले, वह ईश्वर के रहस्यों को पूरी तरह नहीं जान पाया है। ईश्वर इनसान के लिए आज भी एक चुनौती के समान है।

इनसान का विज्ञान आज भी आत्मा-परमात्मा, जन्म-मृत्यु के रहस्यों को समझ नहीं पाया है, लेकिन उचित नहीं है कि ईश्वर को मानने के पीछे उसका शक्तिशाली होना या रहस्यमयी होना ही एकमात्र कारण है। कुछ लोग भगवान को प्रेमवश भी चाहते हैं। वे ईश्वर को मानते ही इसीलिए हैं; क्योंकि वे उसे जान गए हैं। ईश्वर अब उनके लिए कोई रहस्य नहीं है।

यदि हम ईश्वर को मानते हैं, तो उसके पीछे संपूर्ण सृष्टि के संचालक की शक्ति को मानना या उसके प्रति श्रद्धा व्यक्त करना तर्कसंगत हैं। ईश्वर के प्रति श्रद्धा की वजह है हमारा विश्वास। हम यह मानते हैं कि हमारे पास जो कुछ भी है, वह ईश्वर की ही देन है। यहाँ तक कि हमें जीवन भी उसने ही दिया है, यानी वह दाता है। इसलिए उसके प्रति आभार प्रकट करना उचित है।

ईश्वर को मानने का एक कारण भय भी हो सकता है। कुछ लोगों के मन में यह भय होता है कि जीवन में आने वाली विपत्तियाँ ईश्वर के क्रोधित होने के कारण ही आती हैं। इसलिए यदि वे ईश्वर की पूजा-अर्चना नहीं करेंगे, तो जीवन में कष्ट और कठिनाइयों के अंबार लग जाएँगे। वहीं दूसरी ओर यदि हम उसकी वंदना करते हैं तो हमारे ऊपर अच्छे स्वास्थ्य, आयु, धन आदि की कृपा बनी रहेगी।

कुछ लोगों के लिए ईश्वर उनके द्वारा संपन्न किए गए कर्मों के लिए फलप्राप्ति का माध्यम है। सच तो यह है कि उसकी पूजा-अर्चना, धार्मिक कर्मकांड कुछ और नहीं, बल्कि उसे प्रसन्न कर मनोवांछित फल प्राप्त करने का माध्यम भर हैं। कुछ लोग न केवल ज्योतिषीय गणना को ईश्वर की कृपाप्राप्ति का आधार मानते हैं, बल्कि कुछ लोग दान-पुण्य में ही ईश्वर की प्राप्ति करते हैं।

कुछ लोग ऐसे भी होते हैं, जो केवल दूसरों का अनुकरण करके ईश्वर को मानने लगते हैं। उन्हें लाभ-हानि

और सच-झूठ किसी से कोई मतलब नहीं होता है। वे ईश्वर को मानते हैं; क्योंकि उनका परिवार मान रहा है या संपूर्ण दुनिया मान रही है। इसलिए वे भी उस भीड़ का हिस्सा बने रहना चाहते हैं। भीड़ से अलग चलना, उन्हें समाज से अलग चलने के समान प्रतीत होता है। सदियों से पीढ़ी-दर-पीढ़ी उनके घर-परिवार के लोग ईश्वर को मानते चले आ रहे हैं, इसलिए वे मानते हैं। कुछ लोग अपनी परंपरा को निभाने के कारण ईश्वर को पूजते व मानते आए हैं। वे उसे तोड़ना नहीं चाहते, बल्कि उसे बरकरार रखना चाहते हैं। संभव है कि वे कुलदेवी या कुलदेव के पूजन के रूप में इस प्रथा को निभाते चले आ रहे हों।

अधिकतर लोगों का यही मानना है कि ईश्वर को मानना ही धार्मिक होने की परिभाषा है अन्यथा उन्हें नास्तिक समझा जाता है। उनका विचार होता है कि धार्मिक आदमी सीधा, सच्चा, साफ और सात्त्विक होता है। इस छवि को बनाए रखने के लिए स्वयं को धार्मिक या आस्तिक कहलवाने के लिए लोग ईश्वर के प्रति श्रद्धा रखते हैं या उसकी पूजा-अर्चना करते रहते हैं। ईश्वर को ध्यान एवं योग-साधना का सबसे सशक्त माध्यम माना जाता है। दरअसल हम सभी स्थान से अपना ध्यान हटाकर ईश्वर को याद करते हैं।

ऐसे लोगों का मानना यही है कि यदि मन को एकाग्रचित्त करना है, तो उस सर्वशक्तिमान को सच्चे मन से याद करना चाहिए। इससे न केवल हमारे मन के विकार दूर होते हैं, बल्कि हम अपनी इंद्रियों को वश में करने में भी सामर्थ्यवान हो जाते हैं। परमात्मा श्रद्धा का विषय है और इसका अनुभव समाधिगम्य है। ❑

राजा ऋषभदेव के सौ पुत्र थे और उन्होंने अपने जीवन में यह व्यवस्था की थी कि उनके ज्येष्ठ पुत्र भरत को राजगद्दी दी जाए और शेष 99 पुत्र संन्यासी हो जाएँ। पिता की आज्ञा शिरोधार्य कर 98 पुत्रों ने संन्यास ले लिया, पर उनमें से बाहुबली नामक एक पुत्र ने कहा कि राजपद का आधार योग्यता होना चाहिए, मात्र अग्रज होना नहीं। उसने भरत को राजपद हेतु अपनी योग्यता का प्रमाण प्रस्तुत करने को कहा। फलस्वरूप विभिन्न प्रतियोगिताओं का दौर चल पड़ा।

राजनीति, धर्म, अर्थ और शस्त्र ज्ञान की प्रतियोगिताएँ हुईं। भरत अग्रज होने पर भी पराजित हुआ तो राज-संसद ने बाहुबली को सिंहासन देने का निर्णय किया। भरत को यह सहन न हुआ। राज्य के लोभ में उसने बाहुबली पर प्राणघातक प्रहार कर दिया।

बाहुबली ने उसके प्रहार को निष्फल कर दिया और प्रतिक्रियास्वरूप भाई भरत के प्राण लेने को उद्यत हुआ कि तभी उसके अंतर्मन से पुकार निकली—'भाई का वध करके जो सिंहासन मिले, उसका क्या मूल्य ?' अंत:प्रेरणा से अभिभूत होकर बाहुबली तुरंत राजपद त्यागकर तपस्या हेतु निकल पड़ा और जनकल्याण के लिए जिए गए अपने जीवन से सदा के लिए अमर हो गया।

ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार— 156



भारतीय पुलिस-प्रशासन पर शोध अध्ययन

जिस प्रकार देश की सीमाओं की सुरक्षा सेना करती है और बाहरी आक्रमण एवं आघातों से देश को बचाए रखती है, उसी प्रकार देश के भीतर की सुरक्षा एवं व्यवस्था बनाए रखने का कार्य पुलिस करती है। पुलिस शब्द का अर्थ आरक्षी या आरक्षक है। इसकी शाब्दिक अवधारणा भले ही आधुनिक युग में निर्धारित की गई, परंतु इसके कार्य और जिम्मेदारियों के निर्वाह करने वाली व्यवस्था इतिहास के हर युग में मौजूद रही है, जिसे हम आज पुलिस-प्रशासन-व्यवस्था और कार्यों के प्रत्यक्षीकरण के आधार पर जानते हैं।

यह व्यवस्था प्राचीनकाल से अलग-अलग नामों एवं रूपों में निरंतर मौजूद रही है और इसे ही आधुनिक काल में पुलिस-व्यवस्था या पुलिस सेवा के रूप में पहचाना जाता है। भारतीय कालखंडों में इसकी एक सुदीर्घ परंपरा रही है। ऐतिहासिक दृष्टि से इसके स्वरूप, महत्त्व व अन्य विशेषताओं से परिचित कराने व आधुनिक पुलिस-प्रशासन के विभिन्न पहलुओं की जानकारी प्रदान करने वाले एक महत्त्वपूर्ण शोध अध्ययन को संपन्न करने का महत्त्वपूर्ण कार्य देव संस्कृति विश्वविद्यालय में किया गया है।

इस विशेष अध्ययन में शोधार्थी ने ऐतिहासिक साक्ष्यों, संदर्भों के साथ-साथ मूल्यांकन व समीक्षात्मक दृष्टि से आधुनिक पुलिस-प्रशासन के लिए एक आदर्श प्रारूप भी प्रस्तुत किया है। यह शोधकार्य वर्ष 2016 में शोधार्थी इप्सित प्रताप सिंह द्वारा श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ0 प्रणव पण्ड्या जी के विशेष संरक्षण एवं डॉ0 रवीन्द्र सिंह के निर्देशन में पूरा किया गया है।

विश्वविद्यालय के भारतीय इतिहास एवं संस्कृति विभाग के अंतर्गत संपन्न किए जाने वाले इस शोध अध्ययन का विषय है—**'इंडियन पोलिस एडमिनिस्ट्रेशनः ए हिस्टोरिकल स्टडी' (फ्रॉम एन्सियेंट टू मॉडर्न) अर्थात प्राचीनकाल से आधुनिक काल तक भारतीय पुलिस-प्रशासन के संदर्भ में एक ऐतिहासिक अध्ययन।**

इस समीक्षात्मक, विवेचनात्मक शोध अध्ययन को कुल छह अध्यायों में विभाजित कर प्रस्तुत किया गया है।

प्रथम अध्याय—विषय प्रवेश है। इस अध्याय के अंतर्गत इस शोध अध्ययन की आवश्यकता, महत्त्व एवं उद्देश्य को प्रस्तुत करते हुए विषय से संबंधित साहित्यिक सर्वेक्षण का विवेचन किया गया है। वर्तमान में भारत की पुलिस-व्यवस्था में अनेक विसंगतियाँ, चुनौतियाँ और समस्याएँ हैं।

ये सभी पहलू तथ्यात्मक रूप से इस अध्याय में सम्मिलित हैं। इसके साथ ही पुलिस-प्रशासन की समस्याओं के समाधान व सुसंचालन में हमारे ऐतिहासिक कालों की सुरक्षा संबंधी अवधारणाओं और विचारों से क्या ग्रहण किया जा सकता है, इस पक्ष पर भी प्रकाश डाला गया है।

द्वितीय अध्याय है—प्राचीन भारतीय आंतरिक सुरक्षा का स्वरूप। इसके अंतर्गत प्राचीन भारत के पाँच ऐतिहासिक महत्त्वपूर्ण कालखंडों की आंतरिक सुरक्षा-व्यवस्था का विस्तृत विवेचन किया गया है। ये पाँच काल हैं—

(1) वैदिकयुगीन आंतरिक सुरक्षा तंत्र,

(2) महाजनपद काल का आंतरिक सुरक्षा तंत्र,

(3) मौर्यकालीन आंतरिक सुरक्षा तंत्र,

(4) गुप्तकालीन आंतरिक सुरक्षा-व्यवस्था और

(5) हर्षवर्धन काल की आंतरिक सुरक्षा-व्यवस्था।

वेदकाल की सुरक्षा-व्यवस्था में दैवी शक्तियों और धर्मशास्त्रीय नियमों का महत्त्वपूर्ण स्थान था। प्रजा की सुरक्षा एवं न्याय के लिए 'समिति' के द्वारा राजा का चयन किया जाता था। इंद्र के राजा होने का उल्लेख है। न्याय के लिए 'सभा' होती थी, जिसमें केवल अनुभवीजनों को ही स्थान मिलता था। सभा के द्वारा ही किसी अपराध की सजा का निर्णय होता था।

इसके अतिरिक्त सेनापति, गण, ग्रामीणी, पुरोहित आदि नामों का उल्लेख भी है, जो वेदकालीन सुरक्षा-व्यवस्था की विशेषताओं को प्रकट करते हैं। इस काल के पश्चात

ऐतिहासिक दृष्टि से महाजनपद काल, जिसे स्मृति काल भी कहा जाता है, इसमें बौद्ध शास्त्रों के अनुसार सोलह राज्यों का उल्लेख है। गांधार, अंग, विंध्य क्षेत्र आदि राज्यों की शासन-प्रशासन-व्यवस्था का बौद्ध ग्रंथों में वर्णन मिलता है।

इस काल में जनपद में विभाजित शासन-व्यवस्था का उल्लेख है। पाणिनी अष्टाध्यायी, स्मृतियों आदि में इस काल के प्रशासनिक कर्त्तव्यों-नियमों का वर्णन उपलब्ध है। मनुस्मृति में राज्यों के आंतरिक अनुशासन के नियमों को बताया गया है। इस काल के सोलह जनपदों में भारतीय प्रशासन-व्यवस्था का व्यापक इतिहास समाहित है।

ये सभी उस काल में भारत के विभिन्न भू-क्षेत्र में एक राजनीतिक संगठन के रूप में प्रशासन का एक वृहद रूप प्रकट करते हैं। मौर्यकाल में प्रांत, प्रदेश, विश्य, ग्राम आदि के अंतर्गत आंतरिक सुरक्षा, न्याय और शासन का विकसित तंत्र प्रकट होता है। कौटिल्य के अनेक नियमों को आज की पुलिस-व्यवस्था तंत्र में देखा जा सकता है। गुप्तकाल में पुलिस-प्रशासन तंत्र का स्वतंत्र रूप सामने आता है। हर्षवर्धन काल में राजा, मंत्रीपरिषद्, अधिकारी और स्थानीय समितियों के रूप में व्यवस्थित सुरक्षा तंत्र के उदाहरण हैं, जिनके अनेक महत्त्वपूर्ण पहलू आज भी प्रासंगिक एवं अपनाए जाने योग्य हैं।

तृतीय अध्याय है—मध्यकालीन भारत के आंतरिक सुरक्षा तंत्र का स्वरूप। इस अध्याय में दिल्ली सल्तनत, विजयनगर, मुगलकाल और मराठा शासन के संदर्भ में भारत की मध्यकालीन आंतरिक सुरक्षा-व्यवस्था का विवेचन किया गया है। इस काल में सुल्तान (राजा) के पास ही सभी राजनीतिक शक्तियाँ केंद्रित रहती थीं एवं सुरक्षा, न्याय, दंड आदि प्रशासन के लिए फौजदार के रूप में एक व्यापक तंत्र विकसित था। ग्रामीण स्तर पर चौकीदार और जिला स्तर पर कोतवाल के हाथों में प्रशासनिक शक्तियों के अंतर्गत सुरक्षा संबंधी कार्रवाई की जाती थी। दिल्ली सल्तनत में प्रशासनिक व्यवस्था तंत्र में वजीर, काजी और कोतवाल की महत्त्वपूर्ण भूमिकाएँ होती थीं।

न्याय-व्यवस्था में जाति और धर्म-आधृत दंड आदि का भी प्रावधान था। विजयनगर शासन काल में कानून, न्याय और सुरक्षा का प्रत्येक जिला स्तर पर एक संगठित तंत्र विकसित था। गाँवों की शांति, सुरक्षा की जिम्मेदारी तलारी के पास होती थी। गाँव ही प्रशासन की प्राथमिक इकाई होते थे। मुगलकाल में फौजदारी प्रशासन-व्यवस्था का स्थान था, जिसमें काजी द्वारा प्रशासन के महत्त्वपूर्ण कार्य संपादित किए जाते थे। मराठा शासन में सूक्ष्म, न्याय, कानून के लिए मुख्य दंडाधिकारी और सूबेदार का पद महत्त्वपूर्ण था। गाँव के मुखिया (पाटिल) की गाँव की शांति, सुरक्षा और प्रशासन में महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती थी।

चतुर्थ अध्याय है—आधुनिक भारत की आंतरिक सुरक्षा-व्यवस्था का स्वरूप। इसके अंतर्गत टीपू सुल्तान का शासन, महाराजा रणजीत सिंह का शासन, ब्रिटिश साम्राज्य का शासन एवं स्वतंत्र भारत के शासन काल की पुलिस-प्रशासन-व्यवस्था का विवेचन किया गया है। टीपू सुल्तान के राज्य में उनकी मुसलिम आस्था का प्रशासन पर प्रभाव रहा, किंतु उन्होंने अपनी कानून और सुरक्षा संबंधी व्यवस्था में पश्चिमी और पूर्वी, दोनों सिद्धांतों का उपयोग किया। महाराजा रणजीति सिंह के शासन को सरकार-ए-खालसा के नाम से जाना जाता है। उनके नियंत्रण क्षेत्र जैसे—मुल्तान, कश्मीर, पेशावर आदि में प्रशासन-व्यवस्था के लिए नाजिम चयनित किए जाते थे। न्याय-व्यवस्था के लिए पंचायत कार्य करती थी।

ब्रिटिश शासन काल में वर्तमान में मौजूदा भारतीय पुलिस-प्रशासन-व्यवस्था की नींव रखी गई और उसकी संरचना को व्यवस्थित करने का कार्य किया गया। ब्रिटिश शासकों ने फौजदारों और ग्रामीण पुलिस की सहायता से पुलिस-प्रशासन की रूपरेखा बनाने का प्रयोग किया और जनपदीय मजिस्ट्रेटों के माध्यम से पुलिस-क्षेत्रों का विभाजन कर दारोगा नियुक्त किए गए। इस पुलिस-व्यवस्था का जनक लार्ड कार्नवालिस था।

सन् 1861 में पुलिस एक्ट के आधार पर पुलिस जिलाधीश को प्रशासन संबंधी कार्यों के निर्देशन का कार्य सौंपा गया। प्रदेश में प्रत्येक जनपद में सुपरिन्टेंडेंट पुलिस के नेतृत्व में पुलिस कार्य करती है और कार्य महानिरीक्षक की अध्यक्षता और उपमहानिरीक्षकों के निरीक्षण में संचालित किए जाने का प्रावधान रखा गया, लेकिन स्वतंत्रता के बाद देश की परिवर्तित राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक अवस्था में पुलिस एक्ट में समय-समय पर सुधार और सुदृढ़ीकरण के प्रयास निरंतर किए जाते रहे हैं।

सन् 1977 में धर्मवीर की अध्यक्षता में राष्ट्रीय पुलिस आयोग की स्थापना की गई, जिसमें आयोग ने पुलिस सेवा

में सुधार हेतु अनेक महत्त्वपूर्ण सिफारिशें केंद्र सरकार के समक्ष प्रस्तुत कीं। इसके पश्चात अन्य समितियाँ भी पुलिस-व्यवस्था के सुधार हेतु परामर्श देती रहीं। इन्हीं में से एक सोली सोराबजी समिति ने सन् 2006 में मॉडल पुलिस एक्ट प्रस्तुत किया।

पंचम अध्याय है—पुलिस-प्रशासन का आदर्श मॉडल-विशेष ऐतिहासिक पहलुओं से युक्त। इस अध्याय में शोधार्थी ने भारतीय पुलिस-प्रशासन के वर्तमान स्वरूप की कमियों, सुधार के महत्त्वपूर्ण उपायों तथा इतिहास के कालखंडों में अपनाई गई प्रशासनिक व्यवस्था के महत्त्वपूर्ण व अपनाने योग्य विचारों को प्रस्तुत किया है।

वर्तमान में पुलिस की छवि पर सुरक्षा, सेवा, न्याय, संरक्षण जैसे कार्यों से ज्यादा राजनीति, माफिया, बड़े अपराधी, नेता जैसे नकारात्मक पहलू हावी हैं। इनसे जुड़े कई उदाहरण भी समाज में सामने आते रहते हैं। अतः आवश्यक है कि पुलिस-प्रशासन की छवि को समाज में विश्वसनीय, जिम्मेदार और सम्मानजनक स्थान प्राप्त कराने की दिशा में सार्थक प्रयास किए जाएँ। यह शोधकार्य इसके लिए पर्याप्त एवं महत्त्वपूर्ण तथ्यों एवं जानकारियों को प्रस्तुत करता है। इस अध्याय में प्रस्तुत मॉडल भारतीय पुलिस-प्रशासन की चुनौतियों के समाधान एवं महत्त्वपूर्ण सुधारों के लिए समुचित मार्गदर्शन करने वाला एक श्रेष्ठ प्रयास है।

शोधकार्य का **अंतिम अध्याय 'उपसंहार'** के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इसके अंतर्गत शोध अध्ययन का सार संक्षेप शोधकार्य की प्रासंगिकता, महत्ता और सामयिकता को विवेचित करते हुए वेदकाल से लेकर आधुनिक काल तक के प्रशासक तंत्र के श्रेष्ठतम सूत्रों पर आधृत एक समन्वयकारी एवं आदर्श पुलिस-प्रशासन के मॉडल का महत्त्व एवं आवश्यकता को सामने लाने का सार्थक प्रयास है। ❑

दो व्यक्ति लंबे प्रवास पर निकले। मार्ग में उन्हें एक सराय पर रुकना पड़ा। उस सराय में एक परिवार रुका हुआ था, जिसके छोटे-छोटे बच्चे भी थे। रात में ठंढक ज्यादा पड़ी तो वे बच्चे ठंढ से सिहरने लगे। उनमें से एक व्यक्ति को उन बच्चों पर दया आई तो उसने अपना कंबल उतारकर उन बच्चों को ओढ़ा दिया। सुबह आँख खुली तो दूसरे व्यक्ति ने देखा कि उसका कंबल कोई चुराकर ले गया है। यह देखकर वह बहुत दुःखी हुआ और रोने-कलपने लगा। उधर जिस व्यक्ति ने स्वेच्छा से अपना कंबल दान में दिया था, वह प्रसन्नचित्त बैठा था।

इस पूरी घटना का साक्षी एक संन्यासी मंडल भी वहाँ बैठा था और उन्हें संबोधित करते हुए उनके गुरु उनसे बोले—"यह संसार भी इसी कंबल की तरह है। जो इसे स्वेच्छा से त्याग देता है, वह निर्द्वंद्व हो जाता है, प्रसन्नचित्त हो जाता है और मोक्ष को प्राप्त होता है; जबकि जो इसे अपना समझकर इससे चिपटा रहता है, वह अपने लिए कष्ट-कठिनाइयों का जाल बुनता रहता है और रोते-कलपते जीवन व्यतीत करता है।" संसार के प्रपंचों में न उलझकर अनासक्त जीवन जीना ही इससे मुक्ति का मार्ग है।

श्रद्धा में शक्ति अपार है





कहते हैं कि श्रद्धा में अपार शक्ति होती है। सच्ची श्रद्धा हो तो साधक सब कुछ प्राप्त कर लेता है और श्रद्धा के अभाव में सारे धर्म-अनुष्ठान, पूजा-उपासना, देवपूजन, गुरुपूजन मात्र आडंबर व प्रवंचना बनकर रह जाते हैं। आडंबर से, प्रवंचना से अहंकार की तुष्टि-पुष्टि ही हो सकती है। उससे साधक को कुछ और हस्तगत नहीं होता, पर श्रद्धा हो तो साधक का जीवन निहाल हो उठता है।

साधक का जीवन तब सुख, सौंदर्य और माधुर्य से भर जाता है। इसलिए साधना में श्रद्धा का विशेष महत्त्व है। श्रद्धा वह अटूट निष्ठा है, जो एक साधक के हृदय में अपने आराध्य के लिए होती है, भगवान के लिए होती है, इष्टदेव के लिए होती है, गुरु रूप भगवान के लिए होती है।

श्रद्धा साधक का आराध्य के प्रति दृढ़ विश्वास है और विश्वास से ही प्रेम पैदा होता है। साधक का, उपासक का, भक्त का, शिष्य का—अपने आराध्य, अपने भगवान, अपने गुरु के प्रति परम प्रेम, निष्काम प्रेम, श्रद्धा-विश्वास से ही निस्सृत होता है, प्रस्फुटित होता है। श्रद्धा न हो, विश्वास न हो तो फिर प्रेम कैसा?

श्रद्धा में वह चुंबकीय शक्ति है, जिससे साधक अपने आराध्य, अपने भगवान, अपने गुरु को अपनी ओर आकर्षित करता है और उन्हें अपने ऊपर कृपा बरसाने को विवश कर देता है। जैसे घने वन, पर्वतमालाएँ बादलों को आकर्षित कर बरसने को विवश कर देते हैं, वैसे ही साधक, शिष्य, भक्त अपनी श्रद्धा से, प्रेम से, भगवान को, गुरु को कृपा बरसाने को विवश कर देते हैं।

सूर, तुलसी, कबीर, रैदास, मीरा, शंकर, ध्रुव, प्रह्लाद आदि ने श्रद्धा के बल पर ही उच्च आध्यात्मिक उपलब्धि को प्राप्त किया था। वहीं श्रद्धा के अभाव में अगणित साधकों की वर्षों की साधनाएँ निष्फल होती रही हैं। अपने गुरु, अपने आराध्य, अपने इष्टदेव, अपने भगवान के प्रति शंका, संदेह साधना को निष्फल बना देते हैं।

श्रद्धा तो वह विद्युतधारा है, जो साधक के तन, मन, हृदय व आत्मा में अपने आराध्य के लिए सदैव प्रवाहित होती रहती है। श्रद्धा की उस विद्युतीय शक्ति से ही साधक सीधे आराध्य से, भगवान से, गुरु से जुड़ जाता है, उसकी आत्मज्योति जगमगा उठती है। उसके अंतस् में दैवी आलोक उतर आता है और उस अलौकिक आलोक में वास करते हुए जीव पल-पल आत्मविभोर होता रहता है।

श्रद्धा ही करुणा, प्रेम व संवेदना बन साधक के हृदय व आत्मा में बहने लगती है। फलस्वरूप उसकी दृष्टि प्रेमदृष्टि बन जाती है। वह जीव मात्र को करुणा व प्रेम भरी दृष्टि से देखता है और तदनुरूप जीवन-व्यवहार करता हुआ सदा आनंदित रहता है।

श्रद्धा से ही साधक का आत्मविस्तार होता जाता है, श्रद्धा, प्रेम, करुणा, संवेदना से भरा उसका हृदय सागर बन लहराता है, जिसमें डूबकर साधक साधना के नित्य नए सोपान छूता जाता है। वह शिव-भाव से जगत् को देखता है। सर्वत्र मंगल-ही-मंगल, कल्याण-ही-कल्याण, आनंद-ही-आनंद दृष्टिगोचर होता है। वह जहाँ भी होता है; वहाँ सुख, सौंदर्य, माधुर्य, आनंद, कल्याण, मंगल आदि ही बाँटता फिरता है।

वह इस जगत् को प्रभु की लीलाभूमि मानकर निष्काम भाव से कर्म करता जाता है, जन्म-मरण के बंधन को तोड़ता हुआ उस साधक के लिए तो मोक्ष, मुक्ति, समाधि, कैवल्य उसके सहचर बन उसके पीछे-पीछे घूमा करते हैं। उसकी श्रद्धा उसे सब कुछ प्राप्त करा देती है। उसे, उसे पाने के लिए कोई अतिरिक्त प्रयास नहीं करना पड़ता।

श्रद्धा के कारण ही तो रैदास की कठौती में गंगा उमड़ आई थीं, मीरा के गिरधर गोपाल उनसे प्रेमालाप किया करते थे, तुलसी के राम उनके हाथों चंदन लगवाते थे, सूर के कृष्ण उनकी बाँहें पकड़ उन्हें रास्ता दिखाते थे, ध्रुव पर नारायण अपना वात्सल्य लुटाने प्रकट हो आए थे, प्रह्लाद के कहने मात्र से नारायण खंभे से प्रकट हो गए थे, श्री रामकृष्ण के हाथों माँ काली भोग ग्रहण करती थी और गायत्री के

सिद्धसाधक, युग के विश्वामित्र युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव को परांबा भगवती आद्यशक्ति माँ गायत्री ने दर्शन दिए थे। यह सब श्रद्धा का ही तो चमत्कार था—ऐसे अगणित उदाहरण हमें शास्त्रों में देखने को मिलते हैं।

शिष्य में श्रद्धा हो तो वह चंद्रमा बन चमक उठता है। श्रद्धा से ही शिष्य का, साधक का—अपने गुरु, अपने भगवान के प्रति पूर्ण समर्पण होता है और पूर्ण समर्पण होते ही उसे अपने अंत:करण में ही, आत्मा में ही परमात्मा के दर्शन होने लगते हैं। गोस्वामी तुलसीदास जी लिखते हैं—

वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शङ्कररूपिणम्।
यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते॥

अर्थात ज्ञानमय, नित्य, शंकररूपी गुरु की मैं वंदना करता हूँ, जिनके आश्रित होने से ही टेढ़ा चंद्रमा भी सर्वत्र वंदित होता है। उसी प्रकार यदि श्रद्धा न हो तो साधक ही नहीं, बल्कि सिद्धजन भी अपने अंत:करण में स्थित ईश्वर को नहीं देख सकते। इस सत्य को ही प्रकाशित करते हुए गोस्वामी तुलसीदास जी लिखते हैं—

भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तःस्थमीश्वरम्॥

अर्थात श्रद्धा और विश्वास के स्वरूप माँ पार्वती और भगवान शंकर की मैं वंदना करता हूँ, जिनके बिना सिद्धजन अपने अंत:करण में स्थित ईश्वर को नहीं देख सकते। अस्तु यदि आराध्य ही श्रद्धा रूप हैं, भगवान ही श्रद्धा रूप हैं, गुरु ही श्रद्धा रूप हैं तो अश्रद्धा से इन्हें कैसे पाया जा सकता है, कैसे समझा जा सकता है।

अत: जो साधक, जो शिष्य, जो भक्त श्रद्धावान हैं, वे ही भगवत्कृपा, गुरुकृपा के अधिकारी हैं। श्रद्धा के अभाव में आत्मज्ञान की प्राप्ति असंभव है। श्रद्धावान को ही सद्ज्ञान, ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है। गीताकार ने स्पष्ट कहा है—

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥

अर्थात जितेंद्रिय, साधनपरायण और श्रद्धालु मनुष्य ज्ञान को प्राप्त होता है तथा ज्ञान को प्राप्त होकर वह बिना विलंब के तत्काल ही भगवत्प्राप्ति रूप परम शक्ति को प्राप्त हो जाता है। वहीं जो अश्रद्धालु हैं, शंकारहित हैं, शंकालु हैं, उनके लिए गीताकार कहते हैं—

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः॥

अर्थात विवेकहीन और श्रद्धारहित संशययुक्त मनुष्य परमार्थ से अवश्य भ्रष्ट हो जाता है। ऐसे संशययुक्त मनुष्य के लिए न यह लोक है, न परलोक है और न सुख ही है।

अस्तु साधक को, शिष्य को, भक्त को चाहिए कि वह ज्ञान, कर्म, भक्ति के माध्यम से अपनी शंका, अश्रद्धा दूर करे और स्वयं को पूर्ण श्रद्धा-समर्पण के साथ अपने आराध्य, अपने भगवान, अपने गुरु को पूर्णत: समर्पित कर दे।

इसी में साधक का, शिष्य का, भक्त का सच्चा हित है, मंगल है, कल्याण है, आनंद है। वह अपने आराध्य के मार्ग पर, गुरु के बताए मार्ग पर बिना शंका, संदेह के चल पड़े। अपने गुरु, अपने आराध्य के दैवी कार्य में सहभागी बने और अपने जीवन को धन्य बना ले। इसमें शिष्य का, साधक का मंगल-ही-मंगल है। सचमुच श्रद्धा की शक्ति अपार है। ❑

कैसे करें लक्ष्य की प्राप्ति

जीवन में लक्ष्य का होना आवश्यक है; क्योंकि लक्ष्य होने के बाद ही ईश्वरप्रदत्त क्षमताओं के नियोजन और सदुपयोग का सिलसिला प्रारंभ होता है और एक अर्थपूर्ण जीवन का विश्वास जगता है। दूसरा लक्ष्य होने के बाद ही वह एकाग्रता पैदा होती है, जो आतिशी शीशे की भाँति सूर्य की किरणों को एक बिंदु पर टिकाकर उसमें सुराख कर सके, कागज के टुकड़े को प्रज्वलित कर सके। ध्येय के प्रति एकनिष्ठ मन से ही लक्ष्यसिद्धि के चमत्कार घटित होते हैं, बिखरे मन से नहीं।

सामान्यतया हर व्यक्ति अमुक सफलता चाहता है, कुछ बड़ी उपलब्धि की चाह रखता है, आंतरिक सुख-शांति चाहता है, लेकिन जब तक यह चाह एक कल्पना, एक सपने या फिर हलके से प्रयास तक सीमित रहती है, तब तक बात बनती नहीं, प्रगति की दिशा में ठोस कदम आगे नहीं बढ़ पाते। छोटे-छोटे प्रलोभन, व्यवधान व चुनौतियों के सामने ये प्रयास शिथिल व बौने पड़ जाते हैं और व्यक्ति ऐसी कमजोर चाह को लिए मुरझाए सपनों का बोझ सीने में लिए एक बेबस व हताश जीवन जीते देखा जाता है।

इसके विपरीत सफलता हर व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकार है, जिसे परमपिता परमेश्वर ने अपनी प्रतिकृति के रूप में इस धरती पर भेजा था, जिसके लिए कुछ भी असंभव नहीं। हर व्यक्ति को अंतर्निहित दिव्यता के साथ कुछ ऐसी विशेषताओं के साथ भेजा गया है कि वह स्रष्टा के इस विश्व उद्यान को और सुंदर व समुन्नत बना सके। लेकिन कमजोर चाहत के चलते सपना पूरा नहीं हो पाता, मंजिल बीच रास्ते में ही छूट जाती है।

लक्ष्यसिद्धि के लिए आवश्यक है कि कल्पना व चाह के साथ दृढ़ इच्छा भी जुड़ी हो, जो लक्ष्य के महत्त्व को समझती हो, इसके लिए उचित कीमत चुकाने के लिए तैयार हो, इसके लिए दृढ़ निष्ठा के साथ अंतिम पल तक डटे रहने का माद्दा लिए हो। इसके साथ में इसे हासिल करने के लिए एक ठोस कार्ययोजना हो व इससे जुड़ा एक अनुशासित कार्यक्रम हो।

इस संदर्भ में लक्ष्य के स्मार्ट होने की बात कही जाती है, जिसको अँगरेजी शब्दों के साथ कुछ इस तरह से परिभाषित किया है, S —स्पेसिफिक, M—मेजरेबल, A —एचीवेबल, R—रियलिस्टिक और T—टाइम-बाउंड। अर्थात लक्ष्य स्पेसिफिक यानी स्पष्ट होना चाहिए। मेजरेबल अर्थात जिसकी प्रगति को मापा जा सके। एचीवेबल अर्थात जो हासिल करने योग्य हो। रियलिस्टिक अर्थात जो वास्तविक हो। टाइम-बाउंड अर्थात जो समय-सीमा में बँधा हुआ हो, जिसकी उपलब्धि को कुछ सप्ताह, माह या वर्षों के दायरे में परिभाषित किया जा सके।

साथ ही लक्ष्य का संतुलित होना भी आवश्यक है, जिसमें व्यक्तित्व के शारीरिक, मानसिक, व्यावहारिक और आध्यात्मिक सभी पक्ष जुड़े हों। व्यक्तिगत के साथ जिसमें पारिवारिक, सामाजिक पक्ष भी समाहित हों अर्थात जिसमें जीवन के आंतरिक एवं बाह्य दोनों पक्षों के बीच संतुलन हो। इसी आधार पर व्यक्ति शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक संतुलन, बौद्धिक विकास, आर्थिक समृद्धि, भावनात्मक परिपक्वता, पारिवारिक सुख-शांति, सामाजिक सौहार्द और आध्यात्मिक उन्नति के साथ एक अर्थपूर्ण जीवन की पूर्णता को अनुभव कर पाता है।

साथ ही ध्यान रहे कि लक्ष्य ऊँचा हो, विराट हो। जिसमें प्रतिदिन अपने श्रेष्ठतम संस्करण बनकर उभरने का संकल्प निहित हो, साथ ही दूसरों के हित का भाव भी जुड़ा हुआ हो। लक्ष्य महत्त्वाकांक्षी हो, लेकिन आंतरिक संतुलन एवं बाह्य वास्तविकता के साथ भी जुड़ा हुआ हो। इन बातों का ध्यान रखते हुए लक्ष्य प्राप्ति की दिशा में संतोषजनक ढंग से आगे बढ़ा जा सकता है, लेकिन साथ ही इस संदर्भ में लक्ष्य तक पहुँचने में व्यवधान बनने वाले तत्त्वों पर भी विचार आवश्यक हो जाता है।

लक्ष्यप्राप्ति में एक बड़ा व्यवधान रहता है कि लोग क्या कहेंगे। यदि आपका लक्ष्य अंतरात्मा से निर्धारित है, तो दुनिया की परवाह न करें, अपने सत्य एवं ईमान पर टिके रहें। लक्ष्यसिद्धि की राह में निराशावादी सोच से दूर रहें,

बाधाओं के चिंतन के बजाय, अब तक की प्राप्त उपलब्धियों की सोचें व आगे क्या करना है, इस पर ध्यान केंद्रित करें तथा वर्तमान में लक्ष्यप्राप्ति की दिशा में स्वयं को व्यस्त रखें। रोज का निर्धारित काम समय पर करें व आज का काम कल पर टालने की वृत्ति से सावधान रहें।

स्वयं को कमतर न आँकें तथा लक्ष्य सदा ऊँचा रखें। कहावत भी है कि यदि सूर्य पर निशाना साधोगे, तो चाँद तक तो पहुँच ही जाओगे। अतः अपने निर्धारित क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन का लक्ष्य रखें, रोज अपने रिकॉर्ड तोड़ते हुए अपना श्रेष्ठतम संस्करण बनते जाएँ। इसमें व्यस्त रहने पर दूसरों से तुलनारूपी कटाक्ष व सांसारिक प्रपंच आदि का समय भी नहीं बचेगा और समय के साथ हीनता के भाव से भी आप उबर रहे होंगे तथा अपनी धुन में आश्वस्त कदमों के साथ मंजिल की ओर अवश्य बढ़ रहे होंगे।

लक्ष्यप्राप्ति में एक बड़ा कारण इसको प्राप्त करने की आकांक्षा में कमी भी रहती है। अतः इसे सदैव सुलगाते रहें। प्रारंभ में बहुत बड़े कदम उठाने से बचें; क्योंकि इनमें विफलता हतोत्साहित कर सकती है। किसी ने ठीक ही कहा है कि जीवन में लंबे कदम बढ़ाना भले ही कठिन हो, लेकिन इंच-इंच तो बढ़ा ही जा सकता है। इस तरह छोटे-छोटे कदम बढ़ाते हुए, अपने विश्वास को जगाते हुए, मार्ग का आनंद लेते हुए मंजिल की ओर बढ़ते रहें।

इसके साथ ही लक्ष्य के महत्त्व को समझें, इसको प्राप्त करने के बाद जीवन में हर स्तर पर किस तरह के सुखद बदलाव आने वाले हैं, इस पर विचार करें। किस तरह पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक व आध्यात्मिक जीवन नए स्तर तक पहुँचने वाला है—इनकी उज्ज्वल कल्पनाओं के साथ अपने अंदर लक्ष्य की भूख पैदा करें। इस तरह एक स्वस्थ, सुखी व सफल संतुष्ट जीवन का बिंब सामने खड़ा कर इस दिशा में सतत बढ़ते रहें।

यदि लक्ष्यप्राप्ति की दिशा में कुछ अधिक समझ नहीं आ रहा हो तो इस क्षेत्र के विशेषज्ञ शुभचिंतकों से मिलकर अपना समाधान पा सकते हैं। इस संदर्भ में परमपूज्य गुरुदेव का लिखा युगसाहित्य बहुत प्रेरक मार्गदर्शन करने में सक्षम है, इसका पूरा लाभ लें। साथ ही जीवन की पूर्णता को प्राप्त महापुरुषों के स्वाध्याय-सत्संग को जीवन का हिस्सा बनाएँ।

अंततः लक्ष्यप्राप्ति में सबसे बड़ा व्यवधान रहता है—आंतरिक प्रेरणा का अभाव। दूसरों की देखा-देखी व बिना अधिक विचारे ही जब हम किसी क्षेत्र में कूद पड़ते हैं, तो ऐसी नौबत आ जाती है। इसलिए भावुकता में किसी लक्ष्य से न जुड़ें। अपने अंतर्मन को टटोलें, एक मौलिक लक्ष्य निर्धारित करें तथा प्रारंभ में बताए गए स्मार्ट लक्ष्य की रणनीति को अपनाते हुए नित्य छोटे-छोटे कदमों के साथ अपने निर्धारित बड़े लक्ष्य को प्राप्त करने की दिशा में अग्रसर हों। ❑

मनुष्य को यह जन्म अपनी प्रगति और विकास के लिए ही मिला है तथा उसे सदा इस दिशा में प्रयत्नशील रहना चाहिए। लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक कहा करते थे—"मैं संसार में मात्र एक वस्तु को पवित्र मानता हूँ और वह है—मनुष्य का अपनी प्रगति के लिए किया गया अनवरत प्रयास। मानवमात्र के प्रति निश्छल प्रेम-भाव रखते हुए और ईर्ष्या-द्वेष आदि भावनाओं की कलुषित छायाओं से दूर रहकर निष्काम भाव से श्रमशील रहने की भावना ही जीवन की सर्वोच्च साधना है। इस तरह किया गया कर्म न केवल मन को मलिनताओं से दूर करता है, बल्कि जन्म-जन्मांतरों से चित्त पर छाए कुसंस्कारों को भी विगलित करता है। भव-बंधनों से मुक्ति ही मनुष्य की सच्ची प्रगति है।"

युगगीता –263

आत्मकल्याण का पथ



(श्रीमद्भगवद्गीता के देवासुरसंपद्विभागयोग नामक सोलहवें अध्याय की इक्कीसवीं किस्त)

[विगत किस्त में श्रीमद्भगवद्गीता के सोलहवें अध्याय के इक्कीसवें श्लोक की व्याख्या की गई थी। इस श्लोक में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि काम, क्रोध और मोह—ये तीन प्रकार के नरक के द्वार जीवात्मा का पतन करने वाले हैं, इसलिए इन तीनों का त्याग कर देना चाहिए। जब मनुष्य के मन में भोगों को प्राप्त करने की इच्छा होती है तो 'काम' जन्म लेता है। यहाँ स्मरण रखने योग्य बिंदु यह है कि मात्र काम-वासना ही काम नहीं है, बल्कि हर तरह की इच्छाएँ, आकांक्षाएँ, तृष्णाएँ, वासनाएँ—ये सब काम का ही परिवर्तित रूप हैं। इनके संग्रह की इच्छा, इनकी प्राप्ति की कामना फिर 'लोभ' के जन्म लेने का कारण बन जाती है। जब इन दोनों की प्राप्ति में बाधा होती दिखाई पड़ती है तो 'क्रोध' जन्म लेता है।

यहाँ पर श्रीभगवान कहते हैं कि इन तीनों का होना ही आसुरी प्रवृत्ति का आधार है और जहाँ आसुरी वृत्ति है, वहाँ उन नरकों के द्वार जीवात्मा के लिए खुलने लगते हैं, जिनकी ओर इशारा भगवान श्रीकृष्ण ने इससे पूर्व के अर्थात बीसवें श्लोक में किया था। भगवान कहते हैं कि सभी तरह के पापकर्मों को करने का आधार ये ही हैं, इसलिए इन तीनों का अविलंब त्याग कर देना चाहिए। इस श्लोक में एक तरह से भगवान इस विषय पर चर्चा करते हैं कि आसुरी संपत्ति का आधार क्या है ? वे कहते हैं कि इसका आधार कामनाएँ हैं। ऐसा समझना चाहिए कि जहाँ भी कामनाओं के पीछे की दौड़ है, वहाँ पर नरक का द्वार खुल गया है। जिनका चिंतन क्षुद्र व संकीर्ण होता है, वे संसार के भोग पदार्थों में आकर्षण को देखते हैं। उनके लिए संसार के भोगों की प्राप्ति ही जीवन का एकमात्र उद्देश्य बन जाती है। कामनाएँ होती हैं तो उनके अधिकतम संग्रह का भाव लोभ को जन्म देता है और इसकी अप्राप्ति क्रोध को जन्म दे देती है। इसलिए भगवान कहते हैं कि ये तीनों नरक के द्वार हैं—'नाशनमात्मनः' अर्थात जीवात्मा का नाश करने वाले हैं, अतः इनको नरक का द्वार समझकर इनका त्याग कर देना चाहिए।]

इसके बाद श्रीभगवान कहते हैं कि

एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम् *॥22॥*

शब्दविग्रह—एतैः, विमुक्तः, कौन्तेय, तमोद्वारैः, त्रिभिः, नरः, आचरति, आत्मनः, श्रेयः, ततः, याति, पराम्, गतिम्।

शब्दार्थ—हे अर्जुन! (**कौन्तेय**), इन (**एतैः**), तीनों (**त्रिभिः**), नरक के द्वारों से (**तमौद्वारैः**), मुक्त (**विमुक्तः**), पुरुष (**नरः**), अपने (**आत्मनः**), कल्याण का (**श्रेयः**), आचरण करता है (**आचरति**), इससे (वह) (**ततः**), परम (**पराम्**), गति को (**गतिम्**), जाता है अर्थात मुझको प्राप्त हो जाता है (**याति**)।

अर्थात हे कुंतीनंदन! नरक के इन तीनों दरवाजों से रहित हुआ जो मनुष्य अपने कल्याण का आचरण करता है, वह उससे परम गति को प्राप्त हो जाता है। काम, क्रोध, लोभ से रहित होने का तात्पर्य है—इनके त्याग का उद्देश्य रखना, इनके वश में न होना। जो इनके वश में नहीं होता, वह स्वतः ही अपने कल्याण के पथ पर गतिशील हो उठता है।

श्रीभगवान यहाँ पर कहते हैं कि '**तमोद्वारैः त्रिभिर्नरः**' अर्थात तम से आच्छादित नरक के इन तीनों द्वारों से जो व्यक्ति मुक्त हो चुका है, वही कल्याण के पथ को प्राप्त कर पाता है और वही परम गति को प्राप्त हो जाता है।

श्रीभगवान यहाँ पर यह भी कहते हैं कि '**एतैर्विमुक्तः**' अर्थात काम, क्रोध व लोभ की भावनाओं से मुक्त। इन भावनाओं से लिप्त होकर जो भी कर्म किया जाता है, वह कभी भी कल्याणकारी नहीं होता है। काम, क्रोध और लोभ से जो घिरा रहता है, उसके द्वारा किया गया कोई भी कर्म अकल्याण का आधार बन जाता है। ऐसे व्यक्ति फिर यदि यज्ञ, दान भी करते हैं तो उनका परिणाम भी अकल्याणकारी ही निकलता है। इसलिए भगवान इनको त्यागने पर विशेष बल देते हैं। श्रीभगवान यहाँ पर उसी शाश्वत सत्य की उद्घोषणा करते हैं, जिसके विषय में वे पहले भी कई बार बोल चुके हैं। वे कहते हैं कि काम, क्रोध और लोभ वस्तुत: एक ही सत्य के विविध पहलू हैं। वे एक ही नदी की विभिन्न धाराएँ हैं।

काम में रुकावट पैदा करने वाले कारण हमारे क्रोध को भड़काते हैं तो वहीं काम को पूर्ण करने में सहयोग करने वाले कारण और तत्त्व हमारे को उनके प्रति लोभी बनाते हैं। जो हमारी वासनाओं की पूर्ति में सहयोगी बनता है, हम उसे और ज्यादा चाहते हैं और जो हमारी वासनाओं की पूर्ति में रुकावट डालता है, हम उसके शत्रु बन जाते हैं, उसके प्रति हमारे मन में क्रोध उठता है।

इसीलिए अध्यात्म शास्त्र में मुक्त मन के लिए एक शब्द प्रयोग होता है—निष्काम। जिसका चित्त कामनाओं से मुक्त हो जाता है, उसके लिए फिर बंधन का कोई कारण नहीं रह जाता। काम हमारे मन में एक तरह की बेचैनी, विक्षिप्तता पैदा करता है, पैसे के प्रति काम-वासना से भरा मन बस, उसी दिशा में सोच पाता है। वह लगातार इसी चिंतन में भरा रहता है कि कैसे हम ज्यादा-से-ज्यादा पैसा इकट्ठा कर लें। वासनाओं से भरा मन उसी के विषय में चिंता करता रहता है। यह एक तरह की विक्षिप्तता की, बेचैनी की अवस्था है। लोभ उस विक्षिप्तता के पनपने का आधार बनता है तो क्रोध उस विक्षिप्तता में आती रुकावट का कारण है।

इसीलिए श्रीभगवान कहते हैं कि ये तीनों मिलकर नरक के द्वार हैं। नरक, सही पूछा जाए तो किसी स्थान का नाम नहीं है, बल्कि काम, क्रोध, लोभ से भरे मन का नाम ही नरक है। जहाँ इन्हें पूरा करने की बेचैनी है, भाग-दौड़ है, विक्षिप्तता है—वहाँ पर नरक जैसी भावना ही है। जहाँ ये तीनों होते हैं, वहाँ प्रवृत्ति आसुरी होती है और मन सदा संताप से भरा रहता है। इसके विपरीत दैवी प्रवृत्ति से युक्त व्यक्तित्व सदा प्रफुल्लता से भरा रहता है। तभी तो कोई-कोई चक्रवर्ती राजा बनकर भी परेशान ही रहता है और कुछ महापुरुष निर्धन होने पर भी बादशाहों जैसा जीवन जी जाते हैं।

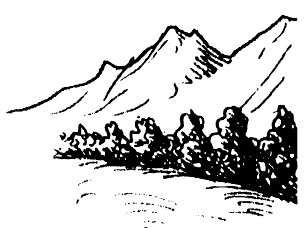
इसीलिए परमपूज्य गुरुदेव ने बाँटने के भाव को देवत्व का, स्वर्ग का आधार बताया; क्योंकि जो बाँटना नहीं जानता, वह अपने आप को सभी ओर से बंद कर लेता है। वह अपने आप को चारों ओर से बंद कर लेता है और एक कारागृह उसके चारों ओर खड़ा हो जाता है। यह कारागृह भावनाओं का कारागृह है, जहाँ न कोई उसके दु:ख बाँटना चाहता है और न यह व्यक्ति अपने सुख को बाँट पाता है। इसके विपरीत जीवन के समस्त आनंदों का आधार बाँटने से ही है। जो आदमी अपने को जितना बाँट पाता है, वह उतना ही संतुष्ट, उतना ही प्रफुल्लित अनुभव करता है।

शायद यही कारण है कि हम परमात्मा को परम आनंद कहकर के पुकारते हैं; क्योंकि परमात्मा ने स्वयं को पूरे जगत् में बाँट दिया है। वह हर जगह फैल गया है। उसका फैलाव ही अस्तित्व है। इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि काम, क्रोध, लोभ से बँधा व्यक्ति अपने जीवन को नरक बना लेता है। वे कहते हैं कि ये तीनों अधोगति को ले जाने वाले हैं, इसलिए इन तीनों को त्याग देना चाहिए; क्योंकि इन तीनों नरकों से मुक्त हुआ पुरुष ही अपने कल्याण के पथ पर आचरण कर पाता है। जिसके मन में ये तीनों भाव हैं, वह कभी कल्याण के पथ का अनुगामी नहीं बन सकता; क्योंकि उसका जीवन सदा अहं-केंद्रित ही रहेगा। जो इनसे मुक्त हो जाता है, उसके जीवन में आत्मकल्याण का मार्ग खुल जाता है और उसी पथ पर चलने का संकेत श्रीभगवान करते हैं। (क्रमशः)

पूर्जायते अनेन इति पूजा।

अर्थात जिस कर्म से फल की सिद्धि हो, उसे पूजा कहा जाता है।

सिद्धस्थल देवात्मा हिमालय



भारतवर्ष के उत्तर में इसकी ढाल की तरह खड़ा हिमालय इसकी शान है, इसकी जान है, इसके अरमानों का शिखर है। इसके बिना भारतीय संस्कृति, सभ्यता एवं इतिहास की कल्पना भी नहीं की जा सकती। भारत में जम्मू-कश्मीर, हिमाचल, उत्तराखंड से लेकर पूर्वोत्तर में आसाम, सिक्किम, अरुणाचल तक 13 राज्यों तक इसका विस्तार है।

भारत के बाहर उत्तरी अफगानिस्तान, उत्तरी पाकिस्तान, तिब्बत, भूटान, नेपाल, बर्मा जैसे देश इसकी गोद में बसे हैं। 2400 किमी० की लंबाई लिए हिमालय एक मेहराब की तरह एशिया के इस भू-भाग की शोभा है और विश्व के सबसे ऊँचे पर्वतों को स्वयं में समाहित किए हुए है।

देव संस्कृति का उद्‌गम हिमालय की उपत्यिकाओं में हुआ। आज लुप्तप्राय नदी सरस्वती का वर्णन सबसे अधिक बार वेदों में आता है, जिसके तट पर विश्व के सबसे प्राचीन ग्रंथ वेद रचे गए। इसी के तट पर वैदिक संस्कृति फली-फूली। ऋग्वेद में सबसे अधिक लगभग 50 बार सरस्वती नदी का उल्लेख मिलता है। वेदों के बाद उपनिषद्, रामायण, महाभारत एवं पुराण ग्रंथों में हिमालय की महिमा का गान मिलता है। भगवान श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं कि पर्वतों में मैं हिमालय हूँ।

अब तक ऐसे कई प्रमाण मिल चुके हैं, जो यह सिद्ध करते हैं कि हिमालय क्षेत्र मानवीय सभ्यता-संस्कृति के विकास का आदि उद्‌भव केंद्र रहा। सृष्टि के प्रथम मानव मनु के चरण सर्वप्रथम इसी दिव्य भूमि पर पड़ते हैं। हिमालय के कैलास पर्वत को देवाधिदेव भगवान शिव का वासस्थान माना जाता है। इनकी सहधर्मिणी माता पार्वती का, हिमवंत की पुत्री के रूप में हिमालय मायका रहा है। आज भी हिमालय के कई क्षेत्रों को शिव-शक्ति की क्रीड़ास्थली के रूप में माना जाता है।

आश्चर्य नहीं कि इतिहासविद् हिमालय को देव संस्कृति का उद्‌गमस्थल मानते हैं कि सबसे पहले इसी की गोद में देव संस्कृति पनपी। आज कैलास मानसरोवर सहित हिमालय के कई पावन क्षेत्रों को हिंदुओं सहित बौद्ध, जैन, सिख धर्मावलंबी अपनी आस्था के आदिस्रोत के रूप में पूजते हैं। यह हिमालय क्षेत्र कई विशिष्टताओं को लिए हुए है, जो इसे विश्व की एक अद्वितीय धरोहर सिद्ध करता है। वहीं कई सारे रहस्यमयी तथ्य इससे जुड़े हुए हैं, जो आज भी वैज्ञानिक विकास के चरम की ओर बढ़ रही मानवीय मेधा के लिए चुनौती बने हुए हैं।

हिमालय दिव्य वनौषधियों का खजाना है, यह बात दूसरी है कि हम इनसे पूरी तरह से परिचित नहीं। रामायण काल में हनुमान जी ने यहीं से संजीवनी बूटी लाकर मूर्च्छित लक्ष्मण को जीवनदान दिया था। हनुमान जी वैद्य सुषैण के कहने पर यहाँ पहुँचे थे, लेकिन जड़ी-बूटी की पहचान न कर पाने के कारण पूरा पहाड़ ही उखाड़कर लेकर गए थे।

यहाँ द्रोणागिरी गाँव के निवासी इस पर्वत की पूजा करते थे। वे आज भी हनुमान जी से इस कारण रुष्ट हैं और उनकी पूजा नहीं करते। इसी तरह ब्रह्मकमल हिमालय का एक दुर्लभ एवं दिव्य पुष्प है। जिसका वर्णन महाभारत में भी आता है, जब भीम द्रौपदी की इच्छा पूरी करने के लिए इस पुष्प की खोज में फूलों की घाटी-क्षेत्र तक पहुँचे थे।

मार्ग में महाबली भीम की चिरजीवी हनुमान जी से भेंट हुई थी, जिसका मार्मिक वर्णन महाभारत में पढ़ सकते हैं, कि किस तरह हनुमान जी भीम के बल का अभिमान तोड़ते हैं और आशीर्वाद के साथ विदाई देते हैं। इस तरह त्रेतायुगीन हनुमान जी द्वापर युग में भी हिमालय में विचरण करते मिलते हैं। आश्चर्य नहीं कि हिमालय ऐसी अमर एवं दिव्य आत्माओं का वास स्थान है, जहाँ आज भी ये दिव्य आत्माएँ विचरण कर रही हैं, तपस्या में मग्न हैं और सत्पात्रों को आवश्यक सहयोग व मार्गदर्शन प्रदान करती हैं। इस क्षेत्र में भ्रमण कर चुके कितने सारे देशी एवं विदेशी पर्यटकों, तीर्थयात्रियों एवं साधकों की मुँहजबानी ऐसे अनगिनत घटनाक्रमों व संयोगों के रहस्यमयी किस्से यदा-कदा सुनने को मिलते रहते हैं।

हिमालय के दुर्गम क्षेत्रों में अनेक ऐसे स्थल हैं, जहाँ दिव्य आत्माएँ हजारों वर्षों से तप-साधना व ध्यान में मग्न हैं। हालाँकि इन्हें चर्मचक्षुओं से नहीं देखा जा सकता, लेकिन सत्पात्रों को ये न केवल दीखते हैं, बल्कि उन्हें ऐसे सिद्ध-क्षेत्रों में प्रवेश भी मिलता है। विज्ञजनों के अनुसार ज्ञानगंज, शंभाला, शंग्रीला, सिद्ध आश्रम जैसे नामों के रूप में ऐसे सिद्धस्थल आज भी दुर्गम हिमालय में विद्यमान हैं, हालाँकि इनका अस्तित्व दूसरे आयाम में है।

परमपूज्य गुरुदेव युगऋषि पं० श्रीराम शर्मा आचार्य जी स्वयं तपोवन के आगे ऐसे दिव्य क्षेत्र में हिमालय यात्राओं के दौरान गए थे। वहाँ की सूक्ष्म शरीरधारी आत्माओं से मिले थे व उनके निर्देश पाकर युग निर्माण योजना के अंतर्गत ऋषि परंपराओं के पुनर्जीवन के कार्य में जुट गए थे।

इसका विस्तृत वर्णन परमपूज्य गुरुदेव की आत्मकथा 'हमारी वसीयत और विरासत' तथा 'सुनसान के सहचर' पुस्तकों में पढ़ा जा सकता है, जहाँ पूज्य गुरुदेव के सूक्ष्म शरीरधारी ऋषि आत्माओं से मिलन के दुर्लभ प्रसंगों का बहुत ही मार्मिक वर्णन मिलता है। आश्चर्य नहीं कि गुरुदेव ने हिमालय को अध्यात्म का ध्रुवकेंद्र कहा है। दादागुरु स्वामी सर्वेश्वरानंद हिमालय के इसी हृदय-क्षेत्र में सैकड़ों वर्षों से तप कर रहे हैं।

ऋषिभूमि, तपोभूमि के साथ हिमालय को देवभूमि के नाम से भी जाना जाता है, जहाँ हर गाँव के अपने देवी-देवता हैं। ऋषियों, तपस्वियों, देवताओं, अवतारी सत्ताओं से जुड़े तमाम तीर्थ, मंदिर एवं पावन स्थल यहाँ पर देखने को मिलते हैं, जो देव संस्कृति की समृद्ध विरासत को दरसाते हैं, हालाँकि इनमें अधिकांश के साथ स्मृतियाँ भर शेष रह गई हैं और कई तरह की विकृतियों का भी इनमें प्रवेश हो चुका है, लेकिन इनमें निहित देव संस्कृति की सांस्कृतिक विरासत को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता, जिनके साथ जुड़े कई रहस्यों पर अनावरण अभी शेष है।

इसी हिमालय से होकर स्वर्ग जाने का मार्ग बताया जाता है। जीवन के उत्तरार्द्ध में कितने सारे तपस्वियों, योगियों एवं देवमानवों को इसकी गोद में आकर देहत्याग करते देखा जा सकता है। पांडव स्वर्गारोहण के लिए इसी क्षेत्र में आए थे, जिसके अवशेष आज भी माणा से आगे सतोपंथ की राह में देखे जा सकते हैं।

महाभारत के रचयिता महर्षि व्यास से जुड़े कई अवशेष आज भी देवभूमि हिमालय में विद्यमान हैं। माना जाता है कि वे अमर हैं व सत्पात्रों को अपना दर्शन व मार्गदर्शन देते हैं। मान्यता है कि भगवान राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न चारों भाइयों सहित उनके गुरु महर्षि वसिष्ठ हरिद्वार से प्रवेश करते हुए हिमालय की ओर बढ़े थे। ऋषिकेश से देवप्रयागपर्यंत इनसे जुड़े तीर्थों को देखा जा सकता है।

आद्यशंकराचार्य अपना सांस्कृतिक दिग्विजय अभियान पूरा करने के बाद अंतिम समय केदारनाथ में ही समाधिस्थ हुए थे। ऐसा ही कुछ स्वामी रामतीर्थ ने भी किया था। स्वामी विवेकानंद का हिमालय प्रेम एवं इसकी गोद में पिंड में ब्रह्मांड के दर्शन उल्लेखनीय हैं। सिक्खों के गुरु नानकदेव से लेकर गुरु गोविंदसिंह के हिमालय के दुर्गम क्षेत्रों में साहसिक यात्राओं को करने से लेकर घनघोर तप करने के अनेक उदाहरण हैं। जैन एवं बौद्ध धर्म के तीर्थंकरों से लेकर बुद्ध पुरुषों को हिमालय की गोद में अपने जीवन के चरमोत्कर्ष व महानिर्वाण को पाते देखा जा सकता है।

इन सबसे स्पष्ट होता है कि हिमालय का नाम देवात्मा हिमालय अकारण ही नहीं पड़ा है। हिमालय से जुड़े कुछ अन्य रहस्य भी हैं, जो अभी तक अनसुलझे हैं, जिनमें हिममानव यति एक बड़ा रहस्य है, जो सबसे पहले इस क्षेत्र में आए विदेशी पर्वतारोहियों के कारण चर्चा में आया। हालाँकि हिमालयी क्षेत्र में इसके अस्तित्व के प्रमाण लोकगाथाओं में पुरातनकाल से ही मिलते हैं।

हिमालय पर पहली बार चढ़ाई करने बाले एडमंड हिलेरी और तेंजिंग नोर्गे ने भी इसका जिक्र किया था। तेंजिंग नोर्गे के पिता स्वयं इसके साक्षी रहे थे। बरफ पर मिले इसके वृहदाकार पदचिह्नों के आधार पर इस रहस्यमयी जीव के बारे में अभी तक तमाम कयास ही लगाए जा रहे हैं। आस्थावान तो इसको चिरंजीवियों के रूप में हनुमान जी या अन्य अमर आत्माओं से भी जोड़कर देखते हैं। जो भी हो इसके अस्तित्व को लेकर अभी प्रत्यक्ष प्रमाण के अभाव में रहस्य बरकरार है कि वास्तव में यह कौन व कैसा प्राणी है।

इसी तरह हिमालय में एलियन्ज व इनकी उड़नतश्तरियों (यूएफओ) की चर्चा भी यदा-कदा समाचारों में आती रहती है। इसके भी अभी तक कोई पुख्ता प्रमाण सामने नहीं हैं। किसी दूसरे ग्रह के प्राणियों की धरती के इस रहस्यमयी

व दिव्य क्षेत्र हिमालय में विशेष रुचि हो, इसे नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। लेकिन इसकी सटीक जानकारी अभी शेष है।

इस तरह हिमालय की दुर्गम वादियों में अभी भी बहुत कुछ ऐसा है जो रहस्यमयी है, अज्ञात है, मानवीय मेधा के लिए चुनौती है, जिसे जानना अभी शेष है। लेकिन साथ ही जो उपलब्ध है, उसे सँजोकर रखना, संरक्षित रखना भी हमारा पावन दायित्व है; क्योंकि इस पर हमारा ही नहीं, आने वाली पीढ़ियों का तथा इस धरती का भविष्य जुड़ा हुआ है। ❑

ढाई हजार साल पहले यूनान के एथेंस नगर में प्लेटो ने एक अकादमी बनाई। इस अकादमी में सैकड़ों की संख्या में छात्र तर्कशास्त्र पढ़ते थे। डायोजनीज नाम के एक प्रसिद्ध संत भी उन दिनों एथेंस में थे। एक दिन वे प्लेटो की अकादमी देखने पहुँचे। उन्होंने अपने आगमन की कोई पूर्व सूचना प्लेटो को नहीं दी थी व आकस्मिक ही वहाँ आ पहुँचे। कक्षा चल रही थी, प्लेटो छात्रों को पढ़ा रहे थे। डायोजनीज विद्यार्थियों के पीछे जाकर चुपचाप खड़े हो गए। कक्षा के दौरान एक विद्यार्थी ने खड़े होकर प्लेटो से प्रश्न किया—''श्रीमान! आप मनुष्य को कैसे परिभाषित करेंगे।'' कुछ क्षण विचार कर प्लेटो ने उत्तर दिया—''मनुष्य बिना पंखों का, दो पैर वाला जानवर है।'' मनुष्य की ऐसी परिभाषा को सुनकर डायोजनीज खिलखिलाकर हँस पड़े। प्लेटो की दृष्टि विद्यार्थियों की अंतिम पंक्ति में उपस्थित संत डायोजनीज पर पड़ी। विनम्रतापूर्वक उसने संत डायोजनीज का अभिवादन किया व उनके इस प्रकार हँसने का कारण पूछा। डायोजनीज बोले—''ठहरो! अभी बताता हूँ।'' वे तुरंत वहाँ से बाहर चले गए, किंतु थोड़ी ही देर बाद वापस लौटकर आए। सभी ने देखा कि अब उनके हाथ में एक मुरगा था, जिसके पंख नुचे हुए थे। डायोजनीज ने उसे प्लेटो और विद्यार्थियों के बीच खड़ा कर दिया और फिर प्लेटो को संबोधित कर कहने लगे—''यही है न आपके अनुसार मनुष्य ? बिना पंख वाला, दो पैर का जानवर।'' प्लेटो यह देखकर स्तब्ध रह गए। निराश हो प्लेटो ने संत डायोजनीज से क्षमा माँगते हुए कहा—''मनुष्य की मैं कोई दूसरी परिभाषा बनाऊँगा। मुझे कुछ समय लगेगा।'' काफी दिन बीत गए, किंतु प्लेटो कोई परिभाषा नहीं बना सके, जो मनुष्य की सटीक व्याख्या करती हो। अंततः परेशान होकर वे संत डायोजनीज के समक्ष प्रस्तुत हुए व उनसे पुनः से माफी माँगी। प्लेटो के इस असंभव प्रयास की भी सराहना करते संत डायोजनीज मुस्कराए और स्नेहपूर्वक उसे समझाने लगे—''प्लेटो! बस, मैं यही सुनना चाहता था। वास्तव में मनुष्य को परिभाषित नहीं किया जा सकता। परिभाषा के नियम स्थिर होते हैं, परंतु मनुष्य का जीवन तरल—बहते हुए पानी जैसा होता है। चेतना की लहरें एक से दूसरे में बदलती रहती हैं, इसलिए उसकी कोई सुस्पष्ट परिभाषा नहीं दी जा सकती।''

मन के हारे हार है, मन के जीते जीत

संसार के समस्त जीवों में मानव की श्रेष्ठता और प्रभुप्रदत्त वरदानों में मानव मन की सर्वोत्कृष्टता सर्वमान्य है। सामान्यत: मन का अर्थ है—प्राणियों की वह शक्ति जिसके द्वारा विचार, अपना-पराया, सुख-दु:ख और संकल्प की अनुभूति होती है।

विद्वानों ने मन को भिन्न-भिन्न ढंग से विवेचित किया है। चंचलता और स्वच्छंदता मन की नैसर्गिक विशेषता है। इस कारण दार्शनिकों का मानना है कि मानव-मन उस जलाशय की भाँति है, जिसका स्थिर जल हवा के प्रभाव से लहरों में परिवर्तित होकर शीघ्र गतिमान हो जाता है।

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार मानव मन में सबसे पहले विचार आता है और फिर उस पर मंथन होता है और उसके बाद उस पर क्रियान्वयन प्रक्रिया आरंभ होती है। विचार ही व्यक्ति के उत्थान और पतन का आधार होते हैं। मन परिवेश से शीघ्र प्रभावित होकर कर्मेंद्रियों और ज्ञानेंद्रियों पर आधिपत्य स्थापित कर लेता है। इसलिए अनुभवी संतों द्वारा मन को ग्यारहवीं इंद्रिय माना जाता है।

मन ही मनुष्य की वह शक्ति है, जिसके द्वारा वह नर-से-नारायण और पुरुष-से-पुरुषोत्तम बन सकता है। यानी मन में उठने वाले विचार यदि श्रेष्ठ होंगे तो मनुष्य उन्नति के शिखर पर पहुँच सकता है, लेकिन निकृष्ट चिंतन उसे पतन के गर्त में पहुँचा देता है, क्योंकि मन की स्वाभाविक प्रवृत्ति मनोनुकूल कार्यों के प्रति संबंधित इंद्रिय को शीघ्र ही प्रभावित कर लेने की होती है। यदि मनुष्य अपने मन को नियंत्रित कर लेता है तो उसका सभी इंद्रियों पर नियंत्रण हो जाएगा। परमपूज्य गुरुदेव ने इस विषय में स्पष्ट लिखा भी है कि '**मन के हारे हार है, मन के जीते जीत**'।

शास्त्रकारों और संतों ने मन के नियंत्रण और परिष्कार के लिए अनेक उपाय बताए हैं। यजुर्वेद में कहा गया है—'मेरा मन शिवसंकल्पपरायण हो और अच्छे विचारों को धारण करने वाला हो।'

यदि हमें मन के माध्यम से बड़ी सफलताएँ अर्जित करनी हैं तो हमें ऐसी उदात्त वैचारिक दृढ़ संकल्पशक्ति को अंत:करण में धारण करना होगा। अनुभवी संतों के अनुसार मन को नियंत्रण में बनाए रखने के लिए पंचविकारों—काम, क्रोध, मद, लोभ और मोह से बचा कर सद्‌गुणों का समावेश करना परमावश्यक है। मन के परिष्कार के लिए इंद्रिय संयम, संतों का सान्निध्य, सत्संग और विवेक आदि की प्राप्ति हरि-कृपा के बगैर संभव नहीं है।

मन प्राणी के शरीर में वह निराकार भाग है, जो निरंतर गतिमान रहता है। मन अपनी कल्पनाओं के माध्यम से समय और अन्य सीमाओं से परे है और इसीलिए वह हजारों वर्ष आगे-पीछे राजा से रंक तक अपनी पहुँच क्षण भर में बना लेता है।

मनुष्य के मन के दो रूप हैं। एक है—चेतन मन और दूसरा है—अचेतन मन। मन की शक्ति इन दोनों में ही समाहित रहती है। चेतन मन हमारी बौद्धिक प्रगति पर आधारित होता है। हमारे वे सभी कार्य जो सोच-समझकर किए जाते हैं, हमारी जाग्रत अवस्था में होते हैं। ये कार्य हमारी चेतना द्वारा होते हैं, जो चेतन मन के निर्देश से संचालित होती है। वहीं अचेतन मन चेतना का दास नहीं है, यह सर्वदा उन्मुक्त है।

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार—अचेतन मन इतना सक्षम होता है कि चेतना के निर्देश की प्रतीक्षा किए बगैर ही स्वाभाविक रूप से कर्म करता रहता है। वास्तव में अचेतन मन व्यक्ति के आधिपत्य से एक प्रकार से परे होता है। यहाँ तक कि कभी-कभी इसके कार्य हमारी इच्छा के विरुद्ध भी हो जाते हैं। यह अचेतन मन सोते-जागते प्रत्येक स्थिति में क्रियाशील रहता है। वास्तव में यह हमारी मूल प्रवृत्तियों का ही संवाहक है। यह न कभी रुकता है और न थकता है। अचेतन मन ही व्यक्ति की शक्ति का भंडार है।

अचेतन मन के अंतर्गत समाहित अच्छी वृत्तियाँ, अच्छे संस्कार स्थायी ग्रंथियाँ स्थापित कर लेती हैं। वे सहज ही उत्साहपूर्वक उत्तम कार्यों को करने के लिए अभ्यस्त हो जाती हैं। इसके विपरीत यदि अचेतन मन में विषैली प्रवृत्ति की ग्रंथियाँ घर जमाए बैठी हैं तो अचेतन

मन स्वयमेव उन्हीं अवांछित कर्मों को बिना किसी निर्देश के करता रहेगा।

अचेतन मन के आधार की रूपरेखा व्यक्ति के विचारों द्वारा ही निर्धारित होती है। जिन भावनाओं, कल्पनाओं और संकल्पों का चिंतन दृढ़तापूर्वक व्यक्ति लगातार अधिक काल तक करता रहता है। वे ही उसके अचेतन मन में उतर जाते हैं और स्थिरता धारण कर लेते हैं।

अंतरात्मा के संकेत पर असत्य व दुर्बल विचारों और मंतव्यों को दूर कर शुभ सत्य व शिवत्व को स्थापित करना चाहिए। व्यक्ति के अचेतन मन में सात्त्विक भावों को दृढ़ करने के लिए श्रद्धा ही एकमात्र आधारभूत तत्त्व है। श्रद्धा ही हमारी ऊर्जा का भंडार है। श्रद्धा के बगैर ज्ञान निष्फल हो जाता है, क्रिया शक्तिविहीन हो जाती है और मनुष्य मात्र एक क्षुद्र प्राणी बनकर रह जाता है।

प्रायः बहुत से व्यक्ति ऊपर से तो भजन करते हैं, किंतु इंद्रियों से विषयों का रस लेते हैं। वस्तुतः उस छिपे हुए रस को ही खोज-खोजकर निकालने की आवश्यकता है। जब तक वह रस भीतर छिपा रहेगा, तब तक कल्याण की आशा दुराशा मात्र है। इसीलिए मन का नित्यप्रति निरीक्षण करना बड़ा आवश्यक और महत्त्वपूर्ण साधन है।

बहुत स्वाध्याय अथवा सत्संग से जो लोग कुतर्क प्राप्त कर लेते हैं, वह अभिमान का जनक होने से उलटे पतन का कारण बन जाता है। मैं आत्मा हूँ। ऐसा कहने ही नहीं, वरन अभ्यास करने की वस्तु है। आत्मा बनकर बुद्धि को देखो और बुद्धि के द्वारा अपने मन को देखो। देहाभिमान ही सब अनर्थों का मूल है, उसका समूल अंत करना ही समस्त आध्यात्मिक प्रक्रियाओं का आधार है। देहाभिमान के कारण ही कामनाएँ अपना विनाशकारी प्रभाव दिखलाती हैं।

कामना ही काम, क्रोध और लोभ बनकर ज्ञान को आच्छादित कर लेती है। मन को वश में करने के लिए ही इस ज्ञान की आवश्यकता है कि मैं आत्मा हूँ। आत्मा बनकर मन की छिपी कामनाओं को अपनी ज्ञानाग्नि से भस्म कर सकते हैं। हमारा मन ही हमारा कल्याण कर सकता है।

यह मन हमारे वश में न हो सका तो ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी हमारा कल्याण नहीं कर सकते।

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बंधुरात्मैव रिपुरात्मनः॥

अर्थात मनुष्य का मन ही उसके कल्याण की सामर्थ्य रखता है। मन ही मनुष्य का मित्र है और वही उसका शत्रु भी है।

विषयों के लिए तड़पने वाले मन में जब भगवान के प्रति तीव्र अनुराग जाग्रत होता है, तभी इस जीव का कल्याण हो पाता है। इसे जाग्रत करने का एकमात्र उपाय यही है कि मन के सामने ऐसी अकाट्य युक्तियाँ रखी जाएँ कि वह विषयों से उपराम होकर भगवान के चरणों का अनुरागी बन जाए।

विचार करें कि रोगी को औषधि ठीक करती है अथवा उसके रोग का निदान। वास्तव में रोग का ठीक-ठीक निदान होने पर जब औषधि दी जाती है तो रोग के दूर होने में अधिक विलंब नहीं होता। यदि रोग का निदान ठीक न होकर गलत हो गया तो दी गई औषधि प्रतिकूल होकर अधिक हानिकारक हो जाती है। निदान में समय लगता है, औषधि देने में नहीं। दवा तो निश्चित है, तैयार ही है।

इसी प्रकार जब अपने मन के रोगों का ठीक-ठीक निदान हो जाएगा तो उसके ठीक होने में अधिक विलंब नहीं लगेगा। संतों के सान्निध्य में, सात्त्विक वातावरण में अथवा सत्संग में अपने मन के दोष उसी भाँति स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं। ऐसे में बैठकर अपने मन को देखें और आत्मनिरीक्षण करें।

अपने आप से पूछें कि इतने वर्षों से माला फेरते-फेरते कई मालाएँ घिस गईं, फिर भी अमुक दोष हमारे में क्यों छिपे बैठे हैं? भजन के प्रभाव से काम, क्रोधादि विकार नष्ट होने चाहिए थे, किंतु वे तो भीतर छिपे समय पाकर अपनी घात पर बैठे हैं। साथ-ही-साथ महात्मा बनने का अभिमान और बढ़ जाता है।

ऐसे में यह दृढ़ निश्चय करें कि इन छिपे शत्रुओं को निकालना है। निश्चय की दृढ़ता लक्ष्य के मार्ग को प्रशस्त करती है और इस प्रकार का निश्चय श्रेष्ठ वातावरण में ही संभव है। शरीर के रोगों के लिए मनुष्य पानी की भाँति पैसा बहाता है। घर का सामान बेचकर तथा ऋण लेकर भी रोग से मुक्त होना चाहता है, किंतु मन के रोगों को दूर करने की ओर मनुष्य थोड़ा भी ध्यान नहीं देता। जब शरीर छूटेगा और यह प्राणपखेरू अनंत की ओर उड़ चलेंगे तो कौन-सा सगा-संबंधी काम आएगा।

मन का निरीक्षण भी साधारण और संसार में आसक्त व्यक्ति नहीं कर सकता। सात्त्विक बुद्धि से ही मन का

निरीक्षण संभव है। जैसे रक्त की एक बूँद में लाखों कीटाणु होते हैं, किंतु उन्हें इन आँखों से देखा नहीं जा सकता। वटवृक्ष का बीज सरसों के दाने जैसा होता है, परंतु उसमें विशाल वृक्ष छिपा हुआ है। इसी भाँति मन में भी करोड़ों दूषित संस्कार समाये हुए हैं।

ऐसे में आवश्यक है कि हम उन्हें देखने वाली दृष्टि बनें और उन्हें सावधानी से देखें। इस जीवन का एक-एक श्वास बहुमूल्य है, उसे व्यर्थ न जाने दें। न जाने, किस क्षण यह भीतर से निकलने वाला श्वास पुनः भीतर न जाए। इसलिए ऐसा निश्चय अवश्य रखें कि हमारा मन पतन की ओर न जाए। कम-से-कम ऐसे शुभ संकल्प तो रहें कि आगामी जन्म में मनुष्य शरीर ही मिले। शुभ भावना मन को दिशा देती है। भावना को स्वच्छ रखने से मन संतुलित रहता है। ❑

एक अमीर आदमी समुद्र में मनोरंजन की दृष्टि से अपनी नाव लेकर निकला। नाव चलाते-चलाते उसे पता ही नहीं चला कि कब वह समुद्र में दूर निकल आया है और मार्ग भटक गया है। अपने आप को अकेला जान वह बहुत घबराया और ईश्वर को याद करने लगा। बहुत देर तक जब कोई मदद नहीं पहुँची तो क्रोध में भरकर वह ईश्वर को कोसने लगा कि ईश्वर भी कितना निष्ठुर है, देखो मैं इतनी कठिनाई में हूँ और मेरी सहायता के लिए कोई उपलब्ध ही नहीं।

थोड़े समय में रात हो गई। नाव बहते-बहते एक किनारे जा लगी। वहाँ तेज हवाएँ चल रही थीं, जिसके कारण नाव के चप्पू आपस में रगड़े और उनमें आग लग गई। अब तक अमीर आदमी अपने जीवन की आशा छोड़ चुका था। मन में पूरी निष्कामता के साथ उसने भगवान को याद किया और बोला—''हे प्रभु! मैंने तुझे मात्र स्वार्थ और अहंकार की पूर्ति के लिए ही याद किया है। जब तक मेरी इच्छाएँ पूर्ण होती रहीं, मैं तुझे पूजता रहा और ऐसा न होने पर मैंने तुझे दुर्वचन भी बोले। मेरे वापस लौटने का एकमात्र सहारा नाव भी अब नहीं है। जीवन समाप्त होने से पूर्व अपने कर्मों के लिए क्षमा माँगता हूँ।''

उसका इतना कहना था कि एक अपरिचित नाव किनारे आ लगी और उसमें से एक व्यक्ति उतरा और बोला—''यहाँ आग जलती देखी तो मदद के लिए आ पहुँचा। लगता है तुम परेशानी में हो।'' अमीर आदमी को तुरंत भान हुआ कि भगवान निष्कामता को प्रेम करते हैं, स्वार्थवश किए गए कर्मकांडों को नहीं।

वसंत—श्रद्धा, समर्पण व बलिदान का पर्व



परमवंदनीया माताजी के उद्बोधनों की यह विशिष्टता है कि उनमें संवेदना के भाव और संकल्प के स्वर, एक साथ विद्यमान होते हैं। वसंत पंचमी, 1987 को दिए गए अपने एक ऐसे ही विशिष्ट उद्बोधन में वे प्रत्येक गायत्री परिजन की अंतरात्मा को झकझोरते हुए उन्हें स्मरण दिलाती हैं कि वे परमपूज्य गुरुदेव व परमवंदनीया माताजी की भुजाएँ बनने के लिए यहाँ आए हैं। वे कहती हैं कि वसंत पंचमी का दिन पूज्य गुरुदेव के आध्यात्मिक जन्मदिवस के रूप में है और इसी दिन उन्होंने स्वयं को अपनी गुरुसत्ता को समर्पित किया था। इस दिन प्रत्येक गायत्री परिजन को स्वयं से यह पूछने की आवश्यकता है कि श्रद्धा, समर्पण व बलिदान की इस परंपरा में हम स्वयं को कितना कस पाए हैं। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को.......

पूज्य गुरुदेव का जन्मदिवस

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

हमारे आत्मीय परिजनो! आज वसंत पर्व है। उल्लास का पर्व, प्रसन्नता का पर्व, प्रेरणा का पर्व और हमारे प्रेरणास्रोत का जन्मदिन है। हमारे आराध्य देव का जन्मदिन है।

आपने यह क्या इतना बड़ा शब्द कह दिया—'आराध्य देव' बेटे! आपके लिए है कि नहीं है, यह बात अलग है; लेकिन मेरे लिए तो है ही और मेरे लिए ही हैं, तो आपके लिए भी होने चाहिए। उन्होंने सारी जिंदगी अपने को तपा डाला और खपा डाला। जिस अपने गुरु की छाया को सब कुछ समझकर उन्होंने अपना समर्पण कर दिया, वह यही समर्पण का दिन है। उन्होंने उस दिन को अपना जन्मदिन मान लिया।

यों तो उनका जन्मदिन आश्विन बदी तेरस को होता है; लेकिन उस जन्मदिन को वे अपना जन्मदिन नहीं मानते। जो पंद्रह वर्ष की उम्र थी, वह तो यों ही चली गई। जैसे अन्य व्यक्तियों का जीवनक्रम होता है, लगभग वैसा ही रहा, लेकिन पंद्रह वर्ष के बाद उन्होंने जो अपने को तपाना शुरू किया, खुद को कसना शुरू किया और खुद को बनाना शुरू किया। अपने गुरु के प्रति जो उनकी भाव-संवेदना थी, उसको उन्होंने दिनोदिन प्रगाढ़ किया। मुसीबतें आई होंगी; लेकिन कभी भी अपनी श्रद्धा को डगमगाया नहीं। उन्होंने जो वचन दिया, वह दिया और अभी भी उसी रास्ते पर हैं।

बेटे! आज उनका जन्मदिन है। हम उनके प्रति प्रार्थना तो क्या कर सकते हैं? क्योंकि सारा-का-सारा वरदान भी वही देते हैं, आशीर्वाद भी वही देते हैं; लेकिन हमारे मन में यह भावनाएँ जरूर आती हैं कि हे भगवान! लाखों वर्षों तक और करोड़ों वर्षों तक यह जन्मदिन ऐसा ही मनाया जाना चाहिए, जैसा कि हम आज मना रहे हैं।

अभी उन्होंने अखण्ड ज्योति में एकाध शब्द लिखा है। उसको मैं आज दोहराना नहीं चाहती हूँ। वह भी कभी होगा, तो देखा जाएगा। ज्योति तो प्रज्वलित बनी ही रहेगी। ज्योति तो कभी बुझ ही नहीं सकती। शरीर? शरीर तो नाशवान है।

गुरुदेव व माताजी का आह्वान

यह तो एक दिन जाएगा ही, लेकिन बड़े, ऊँचे लक्ष्य के लिए जाएगा। उन्होंने अभी से ऐसा क्रम बनाया है; ताकि हम अपनी फुलवारी को हरा-भरा छोड़कर जाएँ। उन्होंने यह आह्वान किया है कि हमारे हाथ कौन-कौन बनते हैं। आप में से कौन हैं कि जो हमारे हाथ बनना चाहते हैं।

आज गुरुजी का जन्मदिन है और इस मिशन का जन्मदिन है। जो भी कार्य किया जाता है, वसंत पर्व से ही शुरू किया जाता है। गायत्री तपोभूमि में अखण्ड ज्योति से लेकर और शांतिकुंज में जो भी शुरू किया है, वसंत पंचमी से ही किया है और आज भी हम वसंत पर्व को ही आपसे कुछ माँगने आए हैं।

जीवन में माँगा है ? कभी नहीं माँगा और कभी माँगेंगे भी नहीं; लेकिन एक चीज माँगने के लिए तुम्हारी माँ उपस्थित हुई है कि कौन हमारे बच्चे हैं जो कि हमारे हाथ बनना चाहते हैं ? गुरुजी का आह्वान है कि हम हजार हाथ का बनना चाहते हैं ? हजार हाथ, जिसमें आप सभी बैठे हैं, सब उनके एक-एक हाथ हैं।

यदि आपका यह संकल्प हो और आपका समर्पण हो, जैसा कि गुरुजी का समर्पण रहा है, वैसा अगर आपका समर्पित जीवन है, तो हम आपको अपना हाथ मान लेते हैं और आज का यह शुभ पर्व आपके लिए भी प्रेरणादायक हो सकता है और आपका भी हम जन्मदिन आज मान लेते हैं। भले ही आप मन-ही-मन संकल्प करना, हाथ मत उठाना।

गुरुदेव-माताजी की भुजाएँ बनें

यह तो अंदर की, अंतरात्मा की पुकार होती है। यह बनावटीपन नहीं होता। यह अंतरात्मा में आया कि नहीं आया। जिसने अपना सारा जीवन खपा दिया है, क्या हम भी उस रास्ते पर चल सकते हैं ? क्या उनके पदचिह्नों पर भी चल सकते हैं ? क्या कदम-से-कदम मिलाकर उनके साथ हम भी चल सकते हैं ? क्या उनकी भुजाएँ हम भी बन सकते हैं ?

बेटे ! भुजाएँ बहुत काम आती हैं। खाना खाने के काम आती हैं। प्रणाम करने के काम आती हैं। तकिये के काम आती हैं। अगर चोट लगती है तो दोनों हाथ ऊपर को कर देते हैं। वे चोट को सह लेते हैं। कौन ? हाथ सह लेते हैं ? हाथ का आह्वान आपके लिए किया गया है।

यदि आप में सामर्थ्य हो और संभव हो, तो बेटे आप हमारे हाथ बनना। हमारी यही आकांक्षा है, यही पुकार है। हम आप लोगों से यही माँगने आए हैं कि आप हमारे हाथ बन जाइए। आप हाथ बन जाएँगे तो बस, आनंद आ जाएगा। विश्वामित्र राजा दशरथ के यहाँ राम-लक्ष्मण को माँगने के लिए स्वयं गए थे और उनको लेकर के आए थे। उनकी माँ ने यदि रोका होता, पिता ने रोका होता, तो वे राजकुमार-के-राजकुमार ही रह गए होते और केवल राजकुमार ही कहलाए होते। राजा दशरथ के पुत्र ही कहलाए होते। भगवान राम नहीं कहलाए होते। यदि सुग्रीव भगवान राम से जुड़ा नहीं होता, तो सुग्रीव डरपोक कहलाया होता, जो भाई के डर के मारे छिपा-छिपा फिरता था। हनुमान यदि भगवान राम से जुड़े नहीं होते, तो हनुमान सुग्रीव के नौकर, मंत्री होते। आज

महापुरुषों की लीलाएँ अद्भुत होती हैं। एक बार संत कबीर ने गुरुनानक को एक रुपये का सिक्का भेजा और गुरुनानक ने संत कबीर को चवन्नी भेजी। संत कबीर ने चवन्नी की हींग खरीदकर एक सेठ द्वारा दिए जा रहे भोज में बन रही दाल में छौंक के रूप में डलवा दी। उससे अनेक लोग तृप्त हो गए।

वहीं गुरुनानक ने संत कबीर द्वारा भेजे गए सिक्के की औषधियाँ खरीदकर उनका यज्ञ करवा दिया। सारे वातावरण में स्वास्थ्य व सात्त्विकता की सुवास फैल गई। प्राप्त समय व संपदा का सदुपयोग ही महापुरुषों को श्रेष्ठ बनाता है।

हम जितना भगवान राम को मानते हैं, उतना ही हम हनुमान के लिए भी नमन करते हैं; क्योंकि हनुमान भगवान राम से जुड़ गए।

गिलहरी, जिसने यह कहा था कि अपने रामकाज के लिए मैं समुद्र को पाटूँगी। क्या वह पाट सकती थी? नहीं, लेकिन उसकी भावनाएँ थीं। नाचीज थी तो क्या? उसकी दिलेरी देखिए, उसकी हिम्मत देखिए, उसकी उदारता देखिए, उसका समर्पण देखिए।

उसने कहा कि भगवान रामकाज में सब लगे हुए हैं और हम बैठे रहें। नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। हम तो समुद्र को पाटेंगे और कहते हैं कि भगवान राम ने गिलहरी को अपने हाथ पर लेकर के प्यार से सहलाया और उसके ऊपर काली धारियाँ पड़ गईं। पता नहीं, पड़ीं की नहीं पड़ीं, पर यह सिद्धांत सही है।

जटायु ने सीता को रावण से बचाने के लिए अपने प्राण दे दिए, तो भगवान राम ने स्वयं आँसू बहाए और उस जटायु का उद्धार किया। विभीषण यदि राम से न जुड़ा होता, तो कौन होता? तो जैसा रावण राक्षस था, वह भी राक्षस होता; लेकिन जुड़ने पर भगवान राम ने स्वयं उसका राजतिलक किया। क्यों? उनसे जुड़ गए न? गुरुजी अपने गुरु से जुड़ने पर कितने महान बन गए, पर उससे पहले उन्होंने अपनी सारी-की-सारी आकांक्षाएँ और अपना सब कुछ उसी में मिला दिया। आप यह मत समझिए कि ऐसे ही वे बिना कुछ किए बन गए। ऐसे नहीं बने।

बेटे! उन्होंने अपने ऊपर इतनी कसाई की है—इतनी कसाई की है कि शायद ही कोई अपने लिए इतना कठोर बनेगा। शायद ही कोई अपने प्रति कसाई करने में सक्षम होगा कि अपने प्रति इतना कड़ा अनुशासन कि बस मैं आपसे क्या कहूँ? वे सबके प्रति बहुत उदार हैं। मैं आपसे कह नहीं सकती कि कितने उदार हैं, पर अपने प्रति बहुत कड़े हैं।

एक बात पर तो वे सबके प्रति कड़े हैं कि कोई परिजन हरामखोरी करे तो उनको बड़ा भारी गुस्सा आता है कि जैसे हम चलाना चाहते हैं, वैसे नहीं चल रहे हैं। क्यों नहीं चल रहे हैं? वे हमारे सामने नहीं बनेंगे, तो कब बनेंगे? इनको बनना चाहिए। बेटे! गुरुजी कई बार अपने भाषण में कड़क बात कह देते हैं। शायद आपने सुना भी होगा।

मिशन के लिए कुछ करिए

उनका मतलब यह नहीं कि वे आपसे नाराज हैं। कुछ और मतलब नहीं है। उनका उद्‌देश्य यही है कि हमारे परिजन ऊँचा उठें। कुछ अच्छा सोचें, कुछ अच्छा विचारें। कुछ अच्छा करेंगे और समाज के, राष्ट्र के काम आएँगे। उनका एक ही लक्ष्य है। हमने जो हाथ माँगे हैं, वे अपने लिए नहीं माँगे हैं कि आप हमारी सेवा कीजिए। हम अपने लिए नहीं माँगते। माँगेंगे तो उसका मतलब है—मिशन।

गुरुजी व्यक्ति नहीं हैं, माताजी व्यक्ति नहीं हैं। हम मिशन हैं। जो मिशन के लिए समर्पित है, वह बच्चा हमको प्राणों से भी ज्यादा प्रिय लगता है और जो मिशन से जुड़ा हुआ नहीं है और गुरुजी और माताजी की आरती उतारे, वह आरती उतार ले, उससे क्या होगा? उससे आपका कोई व्यक्तिगत लाभ तो हो सकता है और संभव है, हो भी जाए, लेकिन हमारी दृष्टि में वह लाभ, लाभ नहीं है, जो खुद के लिए ही है।

बेटे! जिसके लिए समाज कोई चीज नहीं है, राष्ट्र कोई चीज नहीं है, उसको हम कैसे मान लें कि यह हमारा अपना है। वह तो भीड़ है। जैसे मेले-ठेले में होता है, वैसे ही यह भी एक है। नहीं, आप मेला-ठेला में मत रहिए। आप में वह महानता है, महानता के बीज हैं। आप न समझ पाएँ, तो बात अलग है। उसको हम झकझोर रहे हैं, आपको समझा रहे हैं कि आपके अंदर भी महानता के बीज हैं।

महानता के बीजों को फलने-फूलने दीजिए

आप समझ क्यों नहीं पा रहे हैं? उस बीज को जरा उगने तो दीजिए। उस पर फूल-फल आने तो दीजिए। आपने तो उसे अँगारे के नीचे दबा रखा है। ऐसे दबाया है कि वह उगने का नाम ही नहीं लेता। अँगारे पर जो परत जमी रहती है, तो आग की जो विशेषता है, वह दबकर रह जाती है और जब उस परत को हटा देते हैं, तो अँगारे का मूल स्वरूप सामने आ जाता है। आपका जो मूल बीज है, वह सोया हुआ है। वह धूल के नीचे दबा पड़ा है, मैल के नीचे दबा पड़ा है। उस कूड़े-करकट को साफ करो; ताकि आपको जो प्रकाश मिलता है, उससे अनेकों को प्रकाश मिलता चला जाएगा।

बेटे! आज का दिन, आज का पर्व आपको बता रहा है कि आप जो पैदा हुए हैं, आप जो यहाँ से जुड़े हैं, आप जो यहाँ आए हैं, यह आपके कोई पूर्व जन्म के संस्कार हैं।

इस जन्म के हैं कि नहीं, मालूम नहीं, पर पूर्व जन्म के तो अवश्य ही होंगे, जो आप यहाँ आए हैं और जुड़े हैं। नहीं तो अन्य कितने ही व्यक्ति घूमते हैं। हमें क्या मतलब, हम कहाँ उनको सुधारते हैं? लेकिन आपके ऊपर हम इतनी मेहनत करते हैं कि बेटे हम जी-तोड़ मेहनत करते हैं।

कोई भी बच्चा हमारा बिलकुल बागी हो जाए, तब तो हम नहीं कहते, अन्यथा हर संभव हम कलेजे से लगाने की कोशिश करते हैं। हम यह कोशिश करते हैं कि यदि यह सुधरना चाहता है, तो कैसे भी हम सुधारकर रहेंगे। इसके अंदर थोड़ा भी राम-रहीम है, तो फिर बारी हमारी है कि हम इसको ठीक कर लेंगे।

बेटे! आप जुड़े रहें तो, और नहीं जुड़े हैं तो— ऊपर से बने रहो, पर भीतर से जो होंगे, सो ही होंगे, नहीं तो जैसे ऊपर हैं, वैसे ही बने रहें। अगर आप ऊपर से श्रद्धावान हैं, तो भीतर से भी श्रद्धा को जगाइए। जगाकर तो देखिए। अगर आपने श्रद्धा को जगाया होता, तो आपको हर जगह श्रद्धा-ही-श्रद्धा नजर आती। फिर आपको यहाँ बुराइयाँ देखने को नहीं मिलतीं। बुराइयाँ कहाँ हैं? दोष कहाँ हैं? वे हमारे चिंतन में होते हैं। बाहर दोष नहीं होते।

बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलया कोय।
जो दिल खोजा आपना, मुझसे बुरा न कोय॥

मुझसे बुरा कोई नहीं है, पर जब हम अपने अंदर में झाँकें तब। अंदर में नहीं झाँका है, तो हमको सब बुरे ही दिखेंगे और जब अच्छाई देखेंगे, तो पता चलेगा कि बेचारे कितनी-कितनी दूर से आए हैं। सोने का ठिकाना नहीं, खाने का ठिकाना नहीं, ठहरने का ठिकाना नहीं।

कैसे प्यारे बच्चे हैं? छाती से लगाने लायक बच्चे हैं, प्यार करने लायक हैं। दूर-दूर से आए हैं, तो क्या इनमें कुछ अच्छाई नहीं है? अच्छाई भी है। आप यदि जुड़ना चाहते हैं, तो जुड़ने की कसौटी एक ही है। भुजाओं की कसौटी एक ही है। हम एक से ही परखते हैं। कैसे? काम से। क्यों साहब! हमारे लिए क्या काम है? बेटे, अगर देखेंगे तो इतना काम है कि बस, आप थक जाएँगे, पर काम पूरा नहीं होगा। कौन-कौन-सा काम गिनाएँ?

अभी गुरुजी ने रिकार्ड ही किया है, टेप ही किया है। यज्ञ-आयोजनों के बारे में उन्होंने यह कहा है कि जितना पिछले साल हो चुका है, वह पर्याप्त नहीं है; क्योंकि वातावरण के परिशोधन के लिए हमें अगले साल, सन् 1988 का वर्ष जो अभी निकला है, उसमें सूखे से लेकर अन्यान्य जो खराबियाँ उत्पन्न हुई हैं, वे बहुत ज्यादा हुई हैं और आगे भी बहुत होने वाली हैं। उनके परिशोधन के लिए यज्ञ-आयोजन के बारे में कहा है और यह कहा है कि एक-एक हजार कुंड के यज्ञ होने चाहिए।

समय की पुकार को सुनें

बेटे! यह कौन करेगा? संकल्प तो हमारा है। हम पूरा करेंगे? बिलकुल हम पूरा करेंगे और कौन करेगा? यह हाथ पूरा करेंगे, जो बैठे हैं। ये करेंगे और इनको करना चाहिए। नहीं साहब! हमने तो पहले ही कर लिया था, तो अब कैसे करें? बेटे, समय की पुकार है, करना ही पड़ेगा और आपको करना ही चाहिए। आपको समय नहीं दिखाई पड़ रहा है। आप उसको पूरा करिए। और क्या करेंगे? साहब! हमने तो सौ ग्राहक बना दिए अखण्ड ज्योति के, तो और बना। हाथ-पैर का क्या काम होता है?

हाथ कहलाने का ही नहीं होता, कुछ काम करने का भी होता है। दायाँ-बायाँ हाथ अगर कोई बनेगा, तो किस बात का बनेगा? और हम हाथ का क्या करेंगे? बेटे, हम हाथ से काम कराएँगे। इस माने में आप लोग अब हमारे दाएँ-बाएँ हाथ बनेंगे। बेटे, ये कंधे अब थक चुके हैं। तो क्या बुड्ढे हो गए हैं? नहीं बेटे, मन से तो बुड्ढे नहीं हुए हैं। मन से तो जब तक जिएँगे, तब तक बुड्ढे होने का कोई सवाल ही नहीं है। यह तो हमने भगवान के सामने शपथ ली हुई है, गुरु के सामने शपथ ली हुई है कि मरते दम तक हार नहीं मानेंगे। जितना कसना चाहें, जितना काम लेना चाहें, उतना ही करेंगे।

बेटे! उम्र तो उम्र ही होती है और जाना तो है ही। ऐसी दशा में आपको कभी बुला भी पाएँगे कि नहीं बुला पाएँगे। आपको अपने पास बैठाल पाएँगे कि नहीं बैठाल पाएँगे। कभी आप देख भी पाएँगे कि नहीं देख पाएँगे। शक है कि हो सकता है कि आप एक फीसदी देख भी पाएँ, पर निन्यानवे फीसदी यह समझिए कि हम आप जब शरीर को ही सब कुछ मानते हैं, तो शायद यह शरीर भी न रहे, लेकिन शरीर ही तो नहीं रहेगा, पर हमारी जो प्रेरणा है, जिससे प्रेरणा को पाया, वह अखंड दीपक हमारा विद्यमान रहेगा। आप उससे वरदान पाइए। आप उससे प्रेरणा पाइए।

अखंड दीपक से प्राप्त करें प्रेरणाएँ

हम उसी में समाये होंगे। उसी में गायत्री माता हैं। उसी में गुरुजी हैं, उसी में माताजी हैं। आपको वहीं से प्रेरणा मिलेगी। आप सभी हमारे बच्चे हैं। हम चाहते हैं कि समय रहते ही आप सब सँभल जाएँ, तो ज्यादा अच्छा है। हम चाहते हैं कि आपके कंधों पर वजन डालें और आप यह चाहते हैं कि हम गुरुजी के ऊपर वजन डालें। बेटे! यह कैसे हो सकता है?

बेटे! अब तो आप समर्थ हो गए। अब तो आप दाढ़ी-मूँछ वाले हो गए, बड़े हो गए, तो जिम्मेदारी सँभालिए न हमारी। आप हमारे कंधों को हलका कीजिए न। आप तो और वजन डालते जा रहे हैं मनोकामना, ये और वो, चलो वह भी भगवान से प्रार्थना करेंगे। हमेशा करते रहे हैं और आगे भी करते रहेंगे, जब तक जिंदा हैं, तब तक करेंगे और नहीं जिंदा रहेंगे, तो हमने कहा न कि शांतिकुंज में अखंड दीपक के रूप में विद्यमान रहेंगे।

अभी तो नहीं कहा, पर घोषणा कर देंगे कि हम मरें भी, नहीं रहें, तो हमारी मिट्टी को यहीं इसी शांतिकुंज में ही गाड़ा जाना चाहिए। यहीं ठिकाने लगेगी। मेरी जबाँ पर यह सब न जाने कैसे आ गया? ऐसे ही आ गया होगा। संभव है जो भगवान को मंजूर है, वह पहले से ही हो जाता है। वह पहले से ही कहलवा देता है।

बेटे! आप समय रहते ही सँभल जाना। कहीं ऐसा न हो कि यह कहना पड़े कि अरे! हमारे बालक अनाथ रह गए। हम इन्हें अनाथ छोड़कर आए हैं। यह हमारे लिए बड़े शरम की बात है कि जिसका पिता इतना समर्थ, इतना गुणवान है, जिसके अंदर संपदा भरी पड़ी है, गुणों का जखीरा भरा पड़ा है, जिसको इतनी संपदा मिली है और उसके बच्चे गरीब, असहाय रह जाएँ, तो दु:ख होगा।

हमको भी, जहाँ भी हमारी आत्मा रहेगी, वह विचरण करेगी तो परेशान होगी और यह कहेगी कि हम अपने बच्चों का उद्धार नहीं कर पाए। हम अपने बच्चों को बता नहीं पाए कि बेटे, हम आपको कितना कुछ देकर के जा रहे हैं, तो हमसे ज्यादा दुर्भाग्यशाली कौन हो सकता है और आपसे ज्यादा दुर्भाग्यशाली कौन हो सकता है कि आपका इतना समर्थ, बलवान पिता होते हुए भी आप असहाय-के-असहाय रह जाएँगे। दीन-के-दीन ही रह जाएँगे। नहीं, दीन-के-दीन नहीं रहना चाहिए आपको। आपको तो दूसरों के वजन को ढोना चाहिए। जो असहाय हैं, जो दु:खी हैं, जो पीड़ित हैं, हमारा जो समाज पीड़ित है, उसके वजन को तो आपको ढोना ही चाहिए। आप मिशन के हैं और मिशन को आगे बढ़ाना चाहिए यह आपका काम है।

बेटे! न मालूम आपमें से कौन-कौन हस्ती क्या-क्या हो सकता है, पर उसके लायक आपको बनना पड़ेगा? अपने को धोना पड़ेगा। अपनी धुलाई करनी पड़ेगी, कसाई करनी पड़ेगी, रँगाई करनी पड़ेगी। ऊपर से भी रँगों और भीतर से भी रँगों। जब दोनों तरफ से रँग जाएँगे, श्रद्धा से और निष्ठा से, तो फिर आप पक्के हो जाएँगे। अभी तो थोड़े-थोड़े से कच्चे हैं।

मन कभी क्या कहता है, तो कभी क्या कहता है? हाथ में माला लगी रहती है और दिमाग न जाने कहाँ घूमता रहता है? न जाने किधर को जाता है। इधर तो गुरुजी की बात को भी यों कहते हैं कि अरे गुरुजी की बात तो पत्थर की लकीर है। हम तो ऐसा ही करेंगे और जब कुछ करने की नौबत आती है, तो पीछे को पैर हटा लेते हैं।

दुनिया के वे तमाम लोभ, मोह सब आगे आ जाते हैं। उसी समय सारे-के-सारे राक्षस दिखाई पड़ते हैं। कोई दाँत निकाले खड़ा होता है, तो कोई पैरों की जंजीर बनकर खड़ा होता है। वह निकलने ही नहीं देता। बेटे! लोभ, मोह की इन जंजीरों को तोड़कर फेंको और आगे की पंक्ति में आप आ जाइए। आप से यह माँगा जा रहा है। पहले हमने कभी नहीं माँगा, अब माँगते हैं और यह कहते हैं कि अब आप हमारे वजन को हलका कीजिए। अब हमारे जाने के दिन हैं, तो अपने-अपने हिस्से का काम सँभालिए। इतनी बड़ी फुलवारी हम छोड़कर जा रहे हैं, कितना बड़ा बगीचा हम छोड़कर जा रहे हैं, इसे सँभालिए।

बेटे! आपको क्या करना पड़ेगा? आपको पकी-पकाई खानी है। आपको बनानी है क्या? नहीं, आपको बनाना नहीं है। न आटा मलना है और न रोटी बनानी है। तो फिर क्या करना है? पकी-पकाई खानी है। बनाया किसने है? माताजी ने। बेटे! आपके पिता जो दौलत छोड़े जा रहे हैं, वह तो छोड़े जा रहे हैं। आपको कमानी है? नहीं, आपको कमानी नहीं है।

गुरुदेव की विरासत को जन-जन तक फैलाएँ

आपको तो उसे सँभालकर रखना है और उसको फैलाना है। फैलाना है, तो आप आगे की पंक्ति में आ जाइए। ज्यादा मुझे कुछ नहीं कहना। बस, यही कहना है कि जैसे गुरुजी अपने गुरुजी से जुड़े हैं, आप भी उसी तरीके से जुड़ जाइए। मैंने तो जुड़ करके देख लिया है बेटे! मैं तो धन्य हो गई। अब आपका तो मुझे मालूम नहीं कि आप धन्य हुए कि नहीं हुए हैं, पर मैं तो जरूर हो गई।

संभव है, आज ऐसी स्थिति में मैं नहीं हैंडिल कर सकती थी, यदि मैं नहीं जुड़ी होती, पर बेटे! आप सही मानना मैं पैरों-से-पैर मिलाकर चली हूँ और कंधे-से-कंधा मिलाकर चली हूँ। मैंने कभी यह चिंता की ही नहीं कि क्या कह रहे हैं? रात है तो रात है, दिन है तो दिन है। कोई सुझाव देना है, सुझाव दिया होगा। कभी दिमाग गरम हो गया होगा, तो हो गया होगा, ऐसा भी मैं नहीं कहती कि नहीं हो गया; लेकिन सिद्धांत और विचारणा से ऐसे गुँथे रहे आपस में कि बस, क्या कहें आपसे? दूध और पानी कहें? दूध और पानी में कभी खटाई डालें, तो भी फट जाते हैं। हम तो दूध और पानी से भी ज्यादा हैं। एक और एक ग्यारह हैं। एक और एक दो नहीं हैं, ग्यारह हैं। आप जितना समझ लें, उतना ही पर्याप्त है। उन्होंने हमें बहुत दिया है, इसमें कोई शक नहीं, पर हमने भी दिया है।

बेटे! हमने यह दिया है कि हम बनने के लिए तैयार हैं। आप जैसा चाहते हैं, वैसा बनाइए। जो आपकी इच्छा है, वही हमारी इच्छा है। तेल और बत्ती के तरीके से हम जलेंगे। जरूर जलेंगे, यह हमारा प्रण है। आप तेल हैं, तो हम बत्ती हैं। तेल जलेगा, तो बत्ती भी जलेगी। तेल नष्ट होगा, तो बत्ती भी नष्ट होगी। दोनों जलेंगे। दोनों एक हैं, तो बेटे, हम आज इस स्थिति में आ गए। आप भी हमारे साथ-साथ जुड़िए।

हमारे अंदर जो आग जलती है, जो हर समय धधकती रहती है, जिसमें सारे विश्व का चिंतन, सारे राष्ट्र का चिंतन चलता रहता है, उसमें भागीदार बनिए। क्या आप लोगों के लिए ही हमारा जीवन खतम हो जाएगा? क्या यह जीवन चौबीस लाख के लिए ही है? नहीं, इससे ऊँचा भी कुछ सोचना पड़ेगा; क्योंकि गुरुजी का चिंतन चल रहा है। आप तो जुड़ जाइए। जुड़ जाएँगे, तो आनंद आ जाएगा।

बेटे! आज मैं यही कहने आई थी कि आप जुड़ना, जुड़ना, जुड़ना। यदि आप सच्चे मन से जुड़ना चाहते हैं, तो उसकी कसौटी एक ही होगी—आपका कार्य देखना। आपकी श्रद्धा कैसी है? टिकाऊ है या उथली है। आप तो बड़े श्रद्धावान बन रहे हैं। बड़े जोर से आँसू निकल रहे हैं और फिर न जाने क्या हो गया? आज तो समर्पण करते हैं और कल-परसों न जाने हम क्या करते हैं? यह कौन-सी श्रद्धा है? यह कौन-सा अध्यात्म है? यह कोई अध्यात्म नहीं है। अध्यात्म वह होता है, जिससे व्यक्ति को प्रेरणा मिलती है। उस प्रेरणा को पाकर के वह ऊँचा उठता हुआ चला जाता है। उसका चिंतन प्रखर होता चला जाता है। आत्मबल से वह ऊँचा उठता हुआ चला जाता है, वही तो अध्यात्म है।

बेटे! अध्यात्म में अगर आप गुरुजी से जुड़ना चाहते हैं या जुड़ गए हैं अथवा आप में संकल्प है कि हम जुड़ेंगे, तो आप बनिए, जैसा हम चाहते हैं, वैसा ही सारे संसार के लिए हम एक उदाहरण पेश करना चाहते हैं कि हमारे मिशन में आइए। हमारे मिशन को देखिए और हमारे बच्चों को देखिए कि हमारे बच्चे कैसे शानदार हैं? यह हमारा नमूना है। ऐसा न हो कि कोई आए और हमारे मुँह पर थूककर जाए कि अरे देखो कैसे बनाए? धत् तेरे की—ये तो बौने हैं, पिल्ले हैं। पिल्ला कोई कह करके न जाए, बल्कि वह कहे कि जैसे गुरुजी थे, वैसे ही देखो उनके अनुयायी हैं। क्या शानदार हैं। एक-से-एक बढ़िया हैं। क्या करें इनके हाथ चूमें कि इनके पाँव चूमें? क्या करें समझ नहीं आता? ऐसे शानदार बच्चे हैं। उन्होंने कैसे अच्छे बच्चे पैदा किए हैं। तब तो बेटे, हमारी भी शान है और आपकी भी शान है।

हमारी शान को गँवाना मत, हमारी शान को आप बरकरार रहने देना। जैसे भी आप हैं, हमारे लिए ठीक हैं। आपकी श्रद्धा है, तो हमारे लिए आप सब कुछ हैं। आप दो कदम चलिए। हम दो और कदम के लिए आपको धक्का लगाएँगे। बेटे! दो कदम से काम नहीं चलेगा। दो कदम और चल, फिर दो कदम चल, फिर दो कदम के लिए हम धक्का लगाएँगे, आगे चलाएँगे। चलाना हमारा काम है और श्रद्धा आपकी है। श्रद्धा और निष्ठा आपकी है और आगे-आगे धकेलना हमारा काम है। हम आपको धकेलेंगे। इसके लिए आप तैयार रहना। बस, इतनी ही बात मुझे आपसे कहनी थी।

॥ ॐ शांतिः ॥

विश्वविद्यालय परिसर से—202

अनेकों प्रतिस्पर्धाओं में विजेता बने विद्यार्थी



वर्तमान समय वैज्ञानिक आविष्कारों व तकनीकी विकास का समय है। वर्तमान परिस्थितियों में चहुँओर प्रगति व विकास के शिखर को प्राप्त करने की एक अंधी दौड़ दिखाई पड़ती है। इसी का परिणाम है कि सूचना के साधनों से लेकर संचार के माध्यमों तक—हर आयाम में मानवता एक दौड़ का हिस्सा बनी हुई प्रतीत होती है।

निश्चित रूप से इन प्रगति के मानदंडों को छूने का परिणाम शुभ भी निकला है। जीवन पहले की तुलना में ज्यादा सुरक्षित और सुविधामय है एवं अनेकों वैज्ञानिक आविष्कारों के कारण पहले की तुलना में आज किसी भी कार्य को करने में चंद सेकेण्डों का समय ही लगता है, पर साथ ही मनुष्य के व्यक्तित्व में जो परिवर्तन हुए हैं, उन्हें देखकर कभी-कभी गंभीर चिंता भी होती है।

यह ठीक है कि सुख के साधन बढ़े हैं, सुविधाएँ बढ़ी हैं, परंतु क्या यह सत्य नहीं है कि उसी अनुपात में मनुष्य भावनाओं की दृष्टि से, आचरण की दृष्टि से एवं व्यक्तित्व की दृष्टि से पहले की तुलना में ज्यादा पतित हुआ है। एकदूसरे के प्रति स्नेह व विश्वास का स्थान शक, संदेह व कठोरता ने ले लिया है। आवश्यक हो गया है कि मनुष्य के व्यक्तित्व का समग्र रूपांतरण संभव बनाया जाए।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय ने इस महत्त्वपूर्ण दायित्व को अपने सक्षम हाथों में लिया है। इसी कारण विश्वविद्यालय की शिक्षण व्यवस्था से लेकर विद्यार्थियों के सांस्कृतिक कार्यक्रमों का स्वरूप कुछ इस तरह का है कि उनके माध्यम से विद्यार्थियों का समग्र विकास सुनिश्चित किया जा सके। यह भी एक सौभाग्य की बात है कि विश्वविद्यालय के विद्यार्थी सदैव इस कसौटी पर खरे उतरते नजर आते हैं।

इसी क्रम में विगत दिनों देव संस्कृति विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों ने युवा महोत्सव में सम्मिलित होकर अभूतपूर्व कीर्तिमान स्थापित किए। देव संस्कृति विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों को लोकगीत, लोकनृत्य, एकांकी नाटक, शास्त्रीय गायन, शास्त्रीय वादन प्रतिस्पर्धाओं में प्रथम स्थान मिला तो वहीं शास्त्रीय नृत्य, शास्त्रीय वादन एवं भरतनाट्यम जैसी प्रतियोगिताओं में द्वितीय स्थान तथा कत्थक की प्रतियोगिता में तृतीय स्थान प्राप्त हुआ।

इसी क्रम में राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित ऑल इंडिया इंटरयूनिवर्सिटी चैंपियनशिप में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों को सामूहिक प्रदर्शन एवं एकल प्रतियोगिताओं, दोनों ही मुख्य प्रतियोगिताओं में द्वितीय स्थान की प्राप्ति हुई। समस्त देव संस्कृति विश्वविद्यालय परिवार ने इन उपलब्धियों पर अपने हर्ष की अभिव्यक्ति की।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय ने विगत दिनों ऋषिहुड विश्वविद्यालय के साथ एक अनुबंध पर हस्ताक्षर किए थे। उस अनुबंध के तहत विज्ञान भवन में आयोजित एक विशेष कार्यक्रम में देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी को विशिष्ट अतिथि के रूप में आमंत्रित किया गया। इस कार्यक्रम में भारत के उपराष्ट्रपति श्री वैंकेया नायडू जी मुख्य अतिथि के रूप में आमंत्रित थे।

इसके अतिरिक्त इस कार्यक्रम में पूर्व केंद्रीय मंत्री श्री सुरेश प्रभु जी एवं प्रसिद्ध उद्योगपति श्री मोतीलाल ओसवाल एवं श्री अशोक गोयल जी भी उपस्थित थे। इस अवसर पर देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने ऋषिहुड विश्वविद्यालय की शुरुआत को एक समीचीन सौभाग्य करार दिया एवं यह कहा कि भारत के अन्य शैक्षणिक संस्थानों को भी देव संस्कृति विश्वविद्यालय एवं ऋषिहुड विश्वविद्यालय जैसी परंपराओं को अपनाने की आवश्यकता है।

इसके अतिरिक्त देव संस्कृति विश्वविद्यालय में यज्ञीय शोधों पर एक राष्ट्रीय स्तर की कार्यशाला का आयोजन किया गया, जिसमें आई०आई०टी०, नेशनल फिजिकल लेबोरेट्री एवं नेशनल इनवायरन्मेंटल इंजीनियरिंग रिसर्च इन्स्टीट्यूट के प्रतिष्ठित वैज्ञानिकों ने साझेदारी की। उल्लेखनीय है कि देव संस्कृति विश्वविद्यालय इस दिशा में गंभीर शोधें कर रहा है। ❑

अपनों से अपनी बात

विश्वकल्याण हेतु गायत्री मंत्र का आध्यात्मिक प्रयोग

विश्व की वर्तमान भयावह स्थिति का उल्लेख प्रकारांतर से अनेकों बार किया जा चुका है। मनुष्य स्वयं ही इस स्थिति का निर्माता है। विवेक-बुद्धि और कर्म करने का स्वतंत्र अधिकार—इन दो उपहारों को एक साथ बाँधकर सृष्टिकर्त्ता ने मनुष्य को दिया था और आशा की थी कि विवेकसम्मत कर्मों के द्वारा वह अपना और विश्व दोनों का कल्याण करेगा। सुख-शांति से भरा जीवन स्वयं भी जिएगा और दूसरों को भी जीने देगा, किंतु उसे पशुओं की प्रवृत्ति अधिक आकर्षक लगी।

अत: उसने पशु जीवन का स्वार्थवाद और आतंकवाद भी अपना लिया और अपनी बुद्धि को विवेक से अलग कर इन्हीं प्रयोजनों में लगा दिया। कल्याणकारी विवेक का त्याग कर मनुष्य आज अकल्याण का जीवंत स्वरूप धारण किए हुए है। 'धन-वर्चस्व-सुविधा सब मेरे लिए'—आत्मकल्याण का इतना ही अर्थ अब उसके लिए रह गया है।

अर्थ के इस अनर्थ ने ही अनगिनत समस्याएँ उत्पन्न कर मानव जाति को महाविनाश के कगार पर धकेल दिया है। मनुष्य बनाया तो गया है शरीर, मन और हृदय—इन तीन अवयवों को मिलाकर, किंतु आज इसके लिए शरीर और उससे संबंधित उपलब्धियाँ ही महत्त्वपूर्ण रह गई हैं। आर्थिक विकास ही मनुष्य का एकमात्र लक्ष्य बन गया है। इन्हें हस्तगत करने के लिए सद्विचार और सद्विवेक की, औचित्य और मानवीयता तक की बलि चढ़ा देने से उसे हिचक नहीं होती।

कहना न होगा कि सद्विचार और सद्भाव की पूर्णरूपेण उपेक्षा ने ही आज स्वार्थ और आतंक को हावी हो जाने का अवसर दिया है। स्वार्थ और आतंक ही नहीं, आज की अनगिनत समस्याओं की जिम्मेदार केवल मन और भाव-क्षेत्र हृदय की विकृतियाँ हैं। इन विकृतियों के कारण ही आत्मकल्याण की चाह और विश्वकल्याण की भावना ओझल होती जा रही है और व्यक्ति में तनाव तथा विश्व में संघर्ष व बिखराव की भयावह स्थिति निर्मित हुई है।

इन दो मूल कारणों, मन और हृदय की विकृतियों को विश्वस्तर पर दूर करने पर ही विश्व का तमस् छँट पाएगा और उज्ज्वल भविष्य का सपना साकार हो सकेगा। अत: धन आदि स्थूल उपलब्धियों के साथ-साथ श्रेष्ठ विचारणाओं तथा भावनाओं के अर्जन का मार्ग प्रशस्त करना आज की सर्वोपरि आवश्यकता है। केवल आर्थिक व अन्य भौतिक विकास ही नहीं, वरन मानसिक एवं भावनात्मक विकास भी—इन तीनों के संतुलित व समन्वित विकास से एवं सामन्जस्य और सहकारिता की भावना से ही प्रसन्न विश्व का निर्माण होना संभव है।

आत्मकल्याण तथा विश्वकल्याण का चिंतन करने वाले प्रत्येक श्रेष्ठ जन को तथा स्वयंसेवी संस्थाओं को यह तथ्य समझ ही लेना चाहिए कि विचारणाओं तथा भावनाओं को निर्मल और उदार बनाए बिना आत्मिक उत्थान, शांति और कल्याण कभी संभव नहीं है, न व्यक्ति के लिए न विश्व के लिए। आत्मकल्याण और विश्वकल्याण का मार्ग वैचारिक भावनात्मक निर्मलता से होकर ही जाता है, अन्य कोई विकल्प नहीं है।

विश्वव्यापी मानवीय दोषों तथा भावनात्मक विकृतियों का शमन करने जैसा कठिन कार्य इतने व्यापक रूप में कर पाना क्या संभव है और यदि है तो किस उपाय से संभव है? स्पष्ट है कि इन दोषों का शमन करने वाली 'औषधि' केवल वह हो सकती है, जो स्वयं दो विलक्षण गुणों से युक्त हो।

पहला—उस औषधि में विश्वभर में व्याप्त हो सकने की क्षमता हो। दूसरा—उस औषधि में रसायन जैसा गुण हो कि वह मन और हृदय का भेदन कर उनमें प्रवेश कर जाए और वहाँ जड़ जमाए बैठी विकृतियों को उखाड़ दे, उनका शमन कर दे। मानस दोषों की काट सद्विचार से और भावात्मक दोषों की काट सद्भाव से ही हो सकती है।

इस दृष्टि से ऐसी एक औषधि के रूप में स्वाध्याय, मनन और चिंतन हैं। उतनी ही प्रभावशाली और भी एक औषधि है, जिसकी खोज भारत के महान वैज्ञानिक, ऋषियों ने सुदूर अतीत में की थी। वह विलक्षण औषधि है 'तरंग'। यथा ध्वनि-तरंग, विचार-तरंग, भाव-तरंग। पलक झपकते विश्व में व्याप्त हो जाने और शरीर, मन, हृदय को प्रभावित करने की दोनों क्षमताओं से संपन्न ये तरंगें आत्मकल्याण और विश्वकल्याण का एक प्रभावी साधन हो सकती हैं।

प्रकाश में 'ईथर' तत्त्व सर्वत्र व्याप्त है। इस ईथर के माध्यम से ध्वनि-तरंगें पल भर में विश्व में व्याप्त हो जाती हैं। इन्हें रेडियो आदि उपकरणों द्वारा आकर्षित कर पुन: सुना जा सकता है। तरंगों का यह छोटा-सा उपयोग है। यदि वे लयबद्ध हों तो वे लोहे के सुदृढ़ पुल तोड़ सकती हैं; खेतों की, उद्यानों की उपज बढ़ा सकती हैं; मवेशियों की दूध देने की क्षमता का विस्तार कर सकती हैं।

वे सैकड़ों चमत्कारी कार्य संपन्न कर सकती हैं। ध्वनि-तरंगों के श्रेष्ठतम भारतीय वैज्ञानिक जगदीशचंद्र बसु ने अनुसंधान द्वारा प्रमाणित किया है कि शंख या अष्टधातु का घंटा बजाने से उत्पन्न ध्वनि-तरंगें जितनी दूर तक फैलती हैं, उतने क्षेत्र में उपस्थित हानिकारक कीटाणु तत्काल नष्ट हो जाते हैं अथवा भाग जाते हैं।

दोनों संध्याकाल में यह कीटाणु सर्वाधिक होते हैं। उन समयों पर आरती-पूजा के साथ शंख व घंटा बजाने की परंपरा इसीलिए भारतीय व एशियाई देशों में लंबे समय से चली आ रही है। ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान, हरिद्वार में ध्वनि-तरंगों की शक्ति को प्रदर्शित करने के लिए पद्मासन में बैठे एक व्यक्ति का मॉडल स्थापित किया गया है। इस मॉडल के सामने खड़े होकर लयबद्ध ध्वनि करने पर उसकी रीढ़ की हड्डी में चक्र-स्थानों पर लगे छोटे-छोटे बल्ब जलने लगते हैं।

विज्ञान का यह मान्य सिद्धांत है कि वस्तु जितनी महीन या सूक्ष्म होती जाती है, उतनी ही उसमें समायी हुई शक्ति तथा उसकी भेदन एवं व्यापक क्षमताएँ प्रखर होती जाती हैं। शब्द की अपेक्षा विचार सूक्ष्म होते हैं, विचारों से अधिक सूक्ष्म भाव होते हैं। अत: इस सिद्धांत के अनुसार विलक्षण सामर्थ्य वाली ध्वनि या शब्द-तरंगों की शक्ति से कई गुनी अधिक शक्ति का भेदन व व्यापन क्षमता विचार-तरंगों और भाव-तरंगों में होती है।

'टैलीपैथी' इन्हीं तथ्यों के अनुसार कार्य करती है, जिसके द्वारा एक व्यक्ति एकाग्रता और तीव्र भावना की सहायता से अपना संदेश दूसरे व्यक्ति तक पहुँचा और ग्रहण कर सकता है। यदि ध्वनि-तरंगों में विलक्षण सामर्थ्य है तो विचार-तरंगों व भाव-तरंगों की सामर्थ्य का तो अनुमान लगाना भी संभव नहीं है।

आधुनिक विज्ञान इस सदी में 'ध्वनि भौतिकी' नामक विज्ञान का विकास कर पाया है और अभी ध्वनि-तरंगों का ही अध्ययन कर रहा है। यह ध्वनि-भौतिकी विज्ञान बताता है कि भिन्न-भिन्न प्रकार के कार्यों को संपन्न करने के लिए किस प्रकार भिन्न-भिन्न लंबाई (तरंग दैर्ध्य, वेवलैन्थ) वाली लयबद्ध तरंगों को उत्पन्न किया जाता और उपयोग में लाया जाता है।

आधुनिक विज्ञान की यह विवशता है कि किसी भी कार्य को संपन्न करने के लिए उसे यंत्र और संयंत्र चाहिए। भिन्न-भिन्न लंबाइयों की तरंगें उत्पन्न करने और प्रेषित करने के लिए भी उसे यंत्र चाहिए, किंतु वैदिक काल के ध्वनि-विज्ञान के विशेषज्ञ ऋषियों ने इस भारी भरकम आवश्यकता को नकार कर एक अभिनव उपाय खोज निकाला था। उन्होंने विभिन्न अक्षरों की ध्वनि-तरंगों को, उनकी लंबाइयों को तथा उनकी प्रभावशीलता को पहचाना।

इन आधारों पर उन्होंने उपयुक्त अक्षरों को विशेष क्रम से गूँथकर हजारों शब्द व शब्दों के समूह बनाए। फिर आवश्यकता के अनुसार ह्रस्व व दीर्घ के नियम लगाकर उनके उच्चारण निर्धारित किए। बस, इतने से ही, बिना यंत्र-संयंत्रों के, इच्छित लंबाइयों और प्रभावों वाली तरंगें उन शब्द-समूहों से उत्पन्न होने लगीं। भिन्न-भिन्न प्रकार के इन शब्द-समूहों को ऋषियों ने नाम दिया 'मंत्र'।

मंत्र अर्थात इच्छित ध्वनि-तरंगों को उत्पन्न करने वाला शब्द-यंत्र। ध्वनि के नियमों को ध्यान में रखते हुए उन्होंने सहस्रों मंत्र अर्थात शब्द-यंत्र बना डाले, जो आज भी हिंदू धर्मग्रंथों में सुरक्षित हैं। सभी मंत्र—तरंगों की अपरिमित शक्ति से भरे हुए हैं। मंत्रों का शुद्ध व नियमानुसार उच्चारण

बार-बार करने पर, जप करने पर, वे इच्छित तरंगों को उत्पन्न करते हैं और उनके प्रभावों को उपस्थित कर देते हैं।

आधुनिक विज्ञान अभी तक केवल लयबद्ध ध्वनि-तरंगों की शक्ति को जान पाया है और उसका उपयोग करके ही अनेक आश्चर्यजनक कार्य संपन्न कर डाले हैं, किंतु मंत्र में तो कम-से-कम तीन शक्तियाँ एक साथ कार्य करती हैं।

पहली, मंत्र की लयबद्ध ध्वनि-तरंगों की शक्ति। दूसरी, मंत्रार्थ पर मनन से उत्पन्न विचार-तरंगों की प्रबल शक्ति और तीसरी, मंत्र की भावना एवं ध्यान से उत्पन्न भाव-तरंगों की और भी प्रबल शक्ति। इनके अतिरिक्त एकाग्रता व संकल्प आदि शक्तियाँ भी मंत्र शक्ति के साथ योग करती हैं।

इन सब शक्तियों को मिलाकर मंत्र शक्ति का कुल प्रभाव कितना विलक्षण और चमत्कारी हो जाता है, इसका अनुमान लगाना भी संभव नहीं है। निश्चय ही उन वैज्ञानिक ऋषियों की प्रतिभा एवं ज्ञान अत्यंत उच्चस्तर के थे, जिन्होंने बिना यंत्रों के अनेकों गुना शक्तिशाली तरंगों को उत्पन्न करने वाले मंत्रों का व शब्द यंत्रों का आविष्कार किया था।

मंत्र में रहस्यमयी शक्ति है। कोई नहीं जानता कि यह शक्ति विज्ञान, मनोविज्ञान, अतींद्रिय विज्ञान तथा आत्मविज्ञान के किन नियमों के अनुसार उत्पन्न होती तथा सक्रिय होती है, किंतु उसके प्रभाव स्पष्ट रूप से समझ पड़ते हैं। लयबद्ध तथा शुद्ध मंत्रोच्चार से उत्पन्न ध्वनि-तरंगें जहाँ तक फैलती हैं, उतने क्षेत्र के हानिकारक कीटाणु नष्ट हो जाते हैं। वातावरण सत्त्वमय स्पंदनों से भर जाता है।

मंत्र के शब्द-शरीर से उत्पन्न हुई ध्वनि-तरंगें विचार और भाव की तरंगों में घुलकर अमित बलशाली हो जाती हैं और शरीर व प्राणों पर तथा मन व हृदय पर सीधा प्रभाव डालती हैं। जपकर्त्ता में शक्ति का भंडार बढ़ता है। मन सत्त्व से भरता है। हृदय में श्रेष्ठ भावों का उदय होता है तथा आध्यात्मिक संस्कार गहरे व स्थायी होते जाते हैं।

यह अनुभवसिद्ध सत्य है कि नियमानुकूल, लयबद्ध तथा धाराप्रवाह मंत्र-तरंगें अथवा शास्त्रीय राग-रागिनी की तरंगें एक विशेष आकृति का भी निर्माण करती हैं। इस आकृति को उस मंत्र या राग का 'देवता' कहा जाता है। फ्रांस में शांत समुद्रतट की रेत पर बैठकर एक बार एक संगीतज्ञ ने अपने वाद्ययंत्र पर एक भारतीय रागिनी बजाई। धुन समाप्त होने पर उपस्थित लोगों ने आश्चर्यपूर्वक देखा कि सूखी रेत पर वीणापाणि सरस्वती की आकृति उभर आई थी। दूसरे शब्दों में कहें कि मंत्र और मंत्र के देवता एक ही तत्त्व हैं। देवता की विशेषता तथा शक्ति मंत्र में ज्यों-की-त्यों विद्यमान रहती है।

उदाहरणस्वरूप गायत्री मंत्र के देवता 'सविता देव' हैं, जो सर्वकल्याणकारी ब्रह्मतेज से देदीप्यमान हैं। इसलिए एकाग्र चित्त तथा अर्थ पर मनन करते हुए गायत्री मंत्र का भावना तथा ध्यानसहित जप करने से ब्रह्मशक्ति से संपन्न लोक हितकारी तरंगें वायुमंडल में तथा ईश्वर में व्याप्त हो जाती हैं, और जपकर्त्ता को तथा वातावरण को उन गुणों से क्रमशः संपन्न करती जाती हैं।

मंत्रजप भी 'योग' है। इसे जप-योग कहा जाता है। जप को, विशेषतः मानसिक जप को, यदि मंत्र के अर्थ तथा भाव को ध्यान में रखते हुए किया जाए तो मंत्र-तरंगों में अति शक्तिशाली विचार-तरंगें तथा भाव-तरंगें भी घुलती जाती हैं। इस तरंग-त्रिवेणी में प्रचंड ऊर्जा समायी होती है। जपकर्त्ता के चित्त की एकाग्रता तथा 'देवता' का तेजोमय ध्यान अथवा ज्योति या प्रकाशपुंज का ध्यान, इन तरंगों को और भी सघनता, गुणवत्ता तथा गति प्रदान करता है।

अनगिनत निष्ठावान जपकर्त्ता अपने अनुभवों से इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि इन तीन तरंगों के सम्मिलित प्रभाव ने उनके शरीर-मन-हृदय तीनों अवयवों में जमे-जकड़े दोषों का शमन करने में अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। मानसिक तथा भावात्मक दोष जैसे-जैसे हटते जाते हैं, उसी गति से मन और भाव-क्षेत्र हृदय मंत्र की सत्त्वमयी विभूतियों से भरते जाते हैं। यह मंत्र की तीव्र भेदन शक्ति का प्रताप है, जो ऐसी अनूठी उपलब्धि कराता है।

मंत्र व्यापन शक्ति से भी संपन्न होता है। संकल्प और सद्भाव की तरंगें विद्युत-तरंगें हैं। अतः संकल्प और सद्भाव जितने सुदृढ़ होंगे, उतने ही व्यापक क्षेत्र में वे मंत्र-तरंगों को पहुँचा देंगे। यह अंधविश्वास नहीं, संकल्प शक्ति का प्रताप है। भारत में अनेक मंत्र-सिद्ध व्यक्ति हैं, जिनके पास सर्प द्वारा काटे जाने की सूचनाएँ तार-टैलीफोन द्वारा प्रायः ही आती रहती हैं। वे अपने घर पर ही संकल्पयुक्त मंत्रजप

करते हैं और दूर बसे उन व्यक्तियों को सर्प-विष से मुक्त कर देते हैं।

संकल्प और सद्भाव के आधार पर तो अब कुछ विशेषज्ञ डॉक्टर हजारों किलोमीटर दूर रह रहे रोगियों का सफलतापूर्वक इलाज करने लगे हैं। कुल मिलाकर यों कह लें कि एकाग्रता और ध्यान के साथ किया गया मंत्रजप शक्तिशाली तरंगों का निर्माण करता है। सद्विचार और सद्भाव उद्देश्य निर्धारित करते हैं कि इन तरंगों को क्या करना है और संकल्प उन्हें गंतव्य स्थानों या व्यक्तियों तक पहुँचा देता है। इस प्रकार विचार-तरंगों तथा भाव-तरंगों के अमित बल से संपन्न होकर मंत्र की तरंगें संपूर्ण विश्व में व्याप्त हो जाने की सामर्थ्य रखती हैं।

'नाम' की महत्ता भी मंत्र के समकक्ष है। मंत्र के समान 'नाम' भी ध्वनि-तरंगों, विचार-तरंगों तथा भाव-तरंगों की त्रिविध शक्तियों से भरा-पूरा होता है और जपकर्त्ता को तथा वातावरण को जीवनदायी व सात्त्विकी विभूतियों से संपन्न कर देता है। जिसका नाम जपा जाता है, उस 'नामी' ने अपने जीवनकाल में जो अनुपम कार्य किए थे, उनसे उस महामानव की एक अलग पहचान बन गई है। जैसे भगवान राम की पहचान 'मर्यादा' से, बुद्ध की 'करुणा' से और महावीर की 'अहिंसा से'।

नाम के साथ जुड़े हुए गुणों एवं मूल्यों की यह श्रेष्ठतम विचारणा है। इस विचारणा के साथ-साथ जपकर्त्ता के हृदय में यह श्रद्धा-भाव तो उमगता ही रहता है कि 'यह परमात्मा का तारक नाम है। यह मेरे इष्ट का परम प्रिय नाम है।'

इस प्रकार नाम की पवित्र तरंगों में सद्विचार और सद्भाव की शक्तिशाली तरंगें घुलती जाती हैं और 'नाम' मंत्र के समान प्रभावशाली हो जाता है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने तो नाम को नामी से भी बड़ा निरूपित किया है। तृष्णा और वासना को, अन्य मानस दोषों व हृदय की दुर्भावनाओं का शमन करने में भगवन्नाम मंत्र के समान ही समर्थ है। विश्व के सभी धर्मों के अनगिनत अनुयायियों के अनुभव इस तथ्य के साक्षी हैं।

मंत्र तथा भगवन्नाम की तरंगों की इस विस्तृत विवेचना का उद्देश्य उन बुद्धिजीवियों की शंकाओं का निवारण करना था, जो हठी और पूर्वाग्रही तो नहीं हैं, किंतु जो तर्क और विज्ञान की कसौटी पर खरा सिद्ध होने के बाद ही उनकी क्षमता को स्वीकार कर पाएँगे। जो आस्थावान हैं, वे मंत्र व 'नाम' की शक्ति पर सहज भाव से विश्वास करते आए हैं और श्रद्धा-भाव से उनका प्रयोग भी कर रहे हैं।

यह विवेचना कदाचित् उनकी भी उमंग को और उभारने में सहायक हो। आधार चाहे वैज्ञानिक प्रमाण हो अथवा सहज श्रद्धा-भाव हो, काम की बात तो यह है कि मंत्र और भगवन्नाम की सामर्थ्य को समझा जाना चाहिए, स्वीकार किया जाना चाहिए, उससे भी बड़ी बात स्व-हित में एवं विश्व-हित में प्रयोग किया जाना चाहिए।

वह दिन अधिक दूर नहीं, जब ध्वनि विज्ञान के विशेषज्ञ भी अपने शोधों के द्वारा मंत्र-तरंगों, विचार-तरंगों तथा भाव-तरंगों की विलक्षण क्षमताओं का विश्व के सम्मुख उद्घाटन कर देंगे। ऋषिप्रणीत यह संपूर्ण अध्यात्म विद्या प्रकृति के सुदृढ़ नियमों पर अर्थात वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक, दोनों ही नियमों पर ही आधारित एवं क्रियाशील है।

जिन मानस दोषों और भावात्मक दोषों की बहुलता ने मानव को तथा विश्व को विनाश के कगार पर धकेल दिया है, उन दोषों का शमन करने के लिए मंत्रजप अथवा नामजप से अधिक सार्थक व व्यापक सत्प्रभाव उत्पन्न करने वाला अन्य कोई उपाय नहीं दिखता। मंत्र व नाम की कल्याणकारी तरंगों में, सद्भाव और संकल्प की पीठ पर सवार होकर पूरे विश्व में व्याप्त हो सकने की शक्ति है और मानव मन व हृदय को भेदकर दोषों व विकृतियों को उखाड़ने की क्षमता है।

अत: मंत्र व नाम की इन सामर्थ्यों का विश्वकल्याण में उपयोग किया जाना आज की सर्वोच्च आवश्यकता है और प्रत्येक आत्मिक उत्थान के इच्छुक तथा परोपकार-भावसंपन्न का कर्त्तव्य भी। विश्व के इस आपातकाल में प्रत्येक जाति, धर्म व संप्रदाय के ईश्वरभक्तों को ईश्वर और मानवता के प्रति इस नैतिक दायित्व का निर्वाह करना चाहिए। हममें से प्रत्येक की ईश्वरनिष्ठा तथा मानवता के प्रति संवेदनशीलता का यह श्रेष्ठतम एवं क्रियात्मक प्रमाण होगा कि हम विश्वकल्याण की भावना से नित्य मंत्रजप या नामजप करें।

स्पष्ट है कि पाँच-दस हजार व्यक्तियों के जप से उतनी ऊर्जा उत्पन्न न हो सकेगी, जो इस विशाल विश्व में प्रभावी

रूप से संव्याप्त हो सके तथा छह सौ करोड़ की अति विशाल जनसंख्या को सात्त्विकी भावों के प्रभाव में ला सके। इस कल्याणमयी योजना को कार्यान्वित करने के लिए विशाल-संख्यक भावनाशीलों की आवश्यकता है, तभी विश्व--वातावरण में आवश्यक ऊर्जा का सतत प्रवाह बना रह सकेगा।

ये विशालसंख्यक भावनाशील अपने-अपने घरों में रहते हुए विश्वकल्याण की उदार भावना के साथ मंत्र अथवा 'नाम' जप के द्वारा टूट रहे मानव और बिखर रहे विश्व को जुड़ा हुआ रखने में अपना महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं, और स्वयं ईश्वरीय अनुग्रह के पात्र बन सकते हैं।

भारत का पौराणिक इतिहास साक्षी है कि अंतहीन कालचक्र में जब-जब अनीति और स्वार्थ की आसुरी मानसिकता ने सीमा लाँघी है, तब-तब उसका विनाश करने में भारत ने ही पहल की है, उसके बाद विश्व के सभी मत-मतांतरों के संत-जन उन देवासुर संग्रामों में सम्मिलित हुए हैं। अतः बीसवीं सदी की इस भयावह तामसिकता के विरुद्ध भी हमें सबसे पहले उठ खड़ा होना चाहिए।

स्वार्थी केवल अपने हितचिंतन में लगे रहते हैं। संकीर्ण मनोवृत्ति वाले अपने परिवार के हितचिंतन तक अपनी क्षमता को फैलाते हैं। उदार व्यक्ति समाज व राष्ट्र तक अपने हितचिंतन का विस्तार करते हैं, किंतु जिनकी यह श्रद्धा और मान्यता होती है कि 'मानव सेवा, ईश्वर की श्रेष्ठतम उपासना है' वे सत् तत्त्व से जुड़े सज्जन अपनी चेतना का एक अंश विश्वकल्याण में भी अर्पित किया करते हैं।

अखण्ड ज्योति परिवार के सदस्य न स्वार्थी हैं न संकीर्ण मनोवृत्ति के। ज्ञान-यज्ञकर्त्ताओं का ऐसा होना संभव भी नहीं है। अतः समस्त पाठक बंधुओं-बहनों से, संवेदनशील सज्जनों से अनुरोध है कि वे इस भयावह स्थिति से विश्व को मुक्त कराने के अभियान में सहभागी बनें। प्रत्येक जाति, धर्म व संप्रदाय के परोपकारी वृत्ति के सज्जनों को इस परंपरा में सम्मिलित होने का भाव-भरा निमंत्रण है।

इस मिशन से भावात्मक रूप से जुड़े समस्त परिजनों से विशेष आग्रह है कि वे इस अनुरोध पर ध्यान दें और विश्वकल्याण के इस आध्यात्मिक प्रयोग में स्वयं तो सहभागी बनें ही, दूसरों को भी सहभागी बनाने का अभियान आरंभ कर दें।

जिस विचार एवं भावना से प्रेरित होकर व्यक्ति कर्म करता है, उसके प्रभाव दूसरों तक बाद में पहुँचते हैं, सबसे पहले तो वे उस कर्त्ता पर ही अपना असर पहुँचाते हैं। प्रकाश को उलटा फेंककर हीरा दूसरों की आँखों को बाद में चौंधियाता है, पहले वह स्वयं ही भीतर-बाहर से प्रकाशित हो जाता है। भूखे व असमर्थ को दिया गया भोजन उसके पेट में बाद में पहुँचता और उसे तृप्त करता है, पहले वह दाता को ही आत्मतृप्ति की अनुभूति से विभूषित कर देता है।

हम जो कुछ भी दूसरों के लिए करते हैं, उसका परिणाम पहले हम ही पाते हैं। यह प्रकृति का नियम है, जो कभी नहीं टलता। अतः विश्वकल्याण की भावना से संवेदनशील सज्जनों, अखण्ड ज्योति के पाठकों तथा परिजनों द्वारा किया गया जप पहले उनका ही कल्याण करेगा और विश्व भी लाभान्वित होगा। इस प्रकार आत्मकल्याण और विश्वकल्याण, दोनों एक साथ सधेंगे।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये॥

अर्थात— हे सबका भरण-पोषण करने वाले परमेश्वर! आपका मुख सूर्यमंडलरूपी पात्र से ढका हुआ है। कृपया मेरे लिए उस आवरण को हटा लें।

किस मंत्र या भगवन्नाम का जप करें? यह मिशन गायत्री मंत्र की छत्र-छाया में पला, बढ़ा और सक्षम हुआ है। पिछले अनेक वर्षों से वह इसी मंत्र का प्रचार व प्रसार कर रहा है। आज यह महामंत्र विश्व के करोड़ों व्यक्तियों द्वारा जपा जा रहा है। इसके शब्दार्थ और भावार्थ पर ध्यान दें तो स्पष्ट समझ पड़ता है कि यह मंत्र देश, काल और धर्म-संप्रदाय की सीमाओं से संपूर्णतः मुक्त है।

इसमें परमात्मा के किसी भी विशेष नाम का प्रयोग नहीं हुआ है, केवल अपने लिए किसी लौकिक कामना की पूर्ति किए जाने की प्रार्थना तथा इच्छा नहीं की गई है। इस मंत्र के द्वारा संपूर्ण मानव जाति के वास्तविक कल्याण की एक ही प्रार्थना की गई है कि 'वे सर्वसमर्थ परमात्मा हम सब की बुद्धि को सन्मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करें।' ❑

वह पावन शिष्य महान है

अध्यात्म क्षेत्र में पवित्रता का, सर्वोपरि स्थान है।
गुरु-शिष्य संबंध वास्तविक, गुरु से मिलता ज्ञान है॥

तत्त्व ज्ञान के चरम सत्य की, प्राप्ति गुरु से होती है,
उपलब्धि पूर्ण मिलती तब ही, जब बुद्धि समर्पित होती है,
गुरु पूर्णता के प्रकाश-पुंज, गुरु श्रेष्ठ भगवान हैं।
गुरु-शिष्य संबंध वास्तविक, गुरु से मिलता ज्ञान है॥

व्यक्ति नहीं चेतना अंश गुरु, ज्ञानमूर्ति, गुण धाम है,
बिना पात्रता कुछ नहीं मिलता, कहता शुचि अध्यात्म है,
आत्मसमर्पण के बल पर ही, मिटता सब अज्ञान है।
गुरु-शिष्य संबंध वास्तविक, गुरु से मिलता ज्ञान है॥

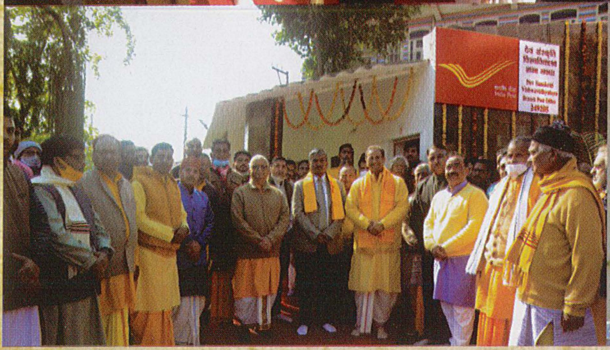
गुरु-कार्यों को करें निरंतर, आदर्शों पर चलते जाएँ,
सूक्ष्म और कारण सत्ता का, गुरु से नित संरक्षण पाएँ,
वही शिष्य उत्तम है जिसने, त्याग दिया अभिमान है।
गुरु-शिष्य संबंध वास्तविक, गुरु से मिलता ज्ञान है॥

अपात्र शिष्य पाते नहीं कुछ भी, मन कलुषित जिनके रहते,
चंदन-तिलक लगा लेते, पर पावन कार्य नहीं करते,
गुरु-अनुशासन में जो रहता, वह पावन शिष्य महान है।
गुरु-शिष्य संबंध वास्तविक, गुरु से मिलता ज्ञान है॥

—विष्णु कुमार शर्मा 'कुमार'

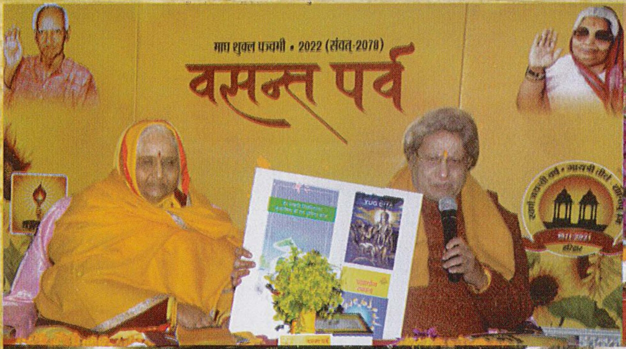








देव संस्कृति विश्वविद्यालय परिसर में भारतीय डाक विभाग द्वारा डाकघर की नई शाखा का शुभारंभ



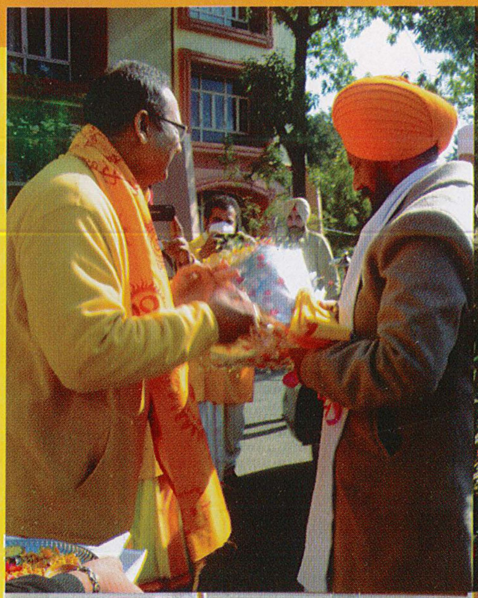




युगतीर्थ में वासंती उल्लास के साथ संपन्न हुआ युगऋषि का आध्यात्मिक जन्मदिवस 'वसंत पर्व'

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

प्र. ति. 01-03-2022
Regd. N0. Mathura-025/2021-2023
Licensed to Post without Prepayment
N0. : Agra/WPP-08/2021-2023







श्री अकाल तख्त साहिब के 30वें जत्थेदार ज्ञानी हरप्रीत सिंह जी का
देव संस्कृति विश्वविद्यालय में आगमन एवं प्रतिकुलपति से भेंट-परामर्श

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक – मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा
से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, घीयामंडी, मथुरा–281003 से प्रकाशित। संपादक – डॉ. प्रणव पण्ड्या।
दूर भाष–0565-2403940, 2402574, 2412272, 2412273 मो बा.–09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039
ईमेल– akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org